प्रकाशन नं:
108

4

नाम क्या है और कैसे जपें ?

ਗਿਆਨ ਰਤਨਿ ਸਭ ਸੋਝੀ ਹੋਇ ॥

ੴ

ਸਿੱਖ ਮਿਸ਼ਨਰੀ ਕਾਲਜ (ਰਜਿ.) ਲੁਧਿਆਣਾ

प्रकाशक
सिख मिशनरी कॉलेज (रजि:)
लुधियाना

15 रुपये

SIKH MISSIONARY COLLEGE (REGD.)

1051/14, Field Ganj, Ludhiana - 141 008. Phone : 0161-2663452
Delhi Sub-office: C-135, Mansarover Garden, New Delhi - 110015 Ph.:011-25413986
Jalandhar Office: Kanwar Satnam Singh Charitabe Complex, Model House Road, Basti Sheikh, Jalandhar - 144 002. Ph. : 0181-2430547
Jammu Sub Office : 36, Gurudwara Singh Sabha Complex, Sector-2, Guru Nanak Nagar, Jammu. Ph. : 0191-2439489

Website : www.sikhmissionarycollege.net
E-mail : smcludh@satyam.net.in

१ੴ वाहिगुरु जी की फतहि ॥

प्रकाशन नं:
108

नाम क्या है
और
कैसे जपें ?

नाम जपहु मेरे साजन सैना ॥

प्रकाशक

सिख मिशनरी कॉलेज (रजि:)

लुधियाना

नाम क्या है और कैसे जपें ?

विषय सूची

कंप्यूटर टाईपसैटिंग : ऐडवांसड कंप्यूटरज़, जालन्धर। फोन : 3201524
प्रिंटरज़ : ब्राईट प्रिंटिंग प्रैस, जालन्धर। फोन : 2292202

प्रकाशक

सिख मिशनरी कॉलेज (रजि:) लुधियाना

1051/14, फील्ड गंज, लुधियाना - 141008, फोन: 0161-2663452

Website : www.sikhmissionarycollege.net

E-mail : smcludh@satyam.net.in

दिल्ली : C-135, मानसरोवर गार्डन, नई दिल्ली - 110015
फोन : 011-25413986

जालन्धर : कंवर सतनाम सिंघ चैरिटेबल कंपलैक्स, माडल हाऊस रोड, बस्ती शेख, जालन्धर। फोन : 0181-2430547

जम्मू : 36, गुरुद्वारा सिंघ सभा कंपलैक्स, सैक्टर 2, गुरु नानक नगर, जम्मू। फोन : 0191-2439489

नाम मार्ग और नाम रस

सिखी एक सच्चा जीवन मार्ग है। यह धर्म मनुष्य का सर्वपक्षीय नेतृत्व करता है। इसमें सब से अधिक बल अकाल पुरुष से अभेदता प्राप्त करने पर दिया गया है और इसके लिए जो मार्ग बताया गया है उसको नाम मार्ग कहा जाता है। नाम मार्ग मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह प्रभु को अंग-संग प्रतीत करता हुआ इस जीवन को ठीक ढंग से जीये और जीवन के पश्चात् उसकी आत्मा परमात्मा (वाहिगरू) में लीन हो जाये।

जीवन-उद्देश्य

गुरबाणी हमें यह सूझ प्रदान करती है कि मनुष्य-जीवन कई जन्मों में भटकने के उपरांत मिला है, इसको व्यर्थ में नहीं गंवाना चाहिए, बल्कि इस जीवन में अकाल पुरुष की प्राप्ति करनी चाहिए अथवा प्रभु से एकसुर होना चाहिए :

कई जनम भए कीट पतंगा॥
कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥
कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥१॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ॥
चिरंकाल इह देह संजरीआ॥१॥ रहाउ॥
कई जनम सैल गिरि करिआ॥
कई जनम गरभ हिरि खरिआ॥
कई जनम साख करि उपाइआ॥
लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ॥२॥(गउड़ी गुआरेरी, म:- ५, पृष्ठ - १७६)

अर्थ: कई जन्म कीट-पतंगे में, कई जन्म हाथी, मछली, हिरणों

में, कई जन्म पक्षियों में, कई जन्म घोड़ों-बैलों में, कई जन्म चट्टानों और पर्वतों में कई जन्म गर्भ में क्षीण हुए, कई जन्म वनस्पति में अथवा चौरासी लाख योनियों में भटकने के उपरांत अब यह शरीर मिला है। इसलिए प्रभु को मिल, यही उसको मिलने का समय है।

भई परापति मानुख देहुरीआ॥
गोबिंद मिलण की एह तेरी बरीआ॥
अवरि काज, तेरै कितै न काम॥
मिलु साध संगति, भजु केवल नाम॥ (आसा, म: ५-१२)

फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ, मानस देह लही॥
नानक कहत मिलन की बरीआ, सिमरत कहा नही॥

(सोरठि, म: ९, ६३१)

उद्देश्य की प्राप्ति

उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति का केवल-एक ढंग है प्रभु का नाम जपना, सिमरन करना अथवा उसका गुण-गायन करना। इसीलिए गुरु साहिबान ने मनुष्य को बार-बार चेतावनी दी है कि प्रभु का नाम जपो, प्रभु के गुणों को हृदय में धारण करो। ऐसा करने से ही यह जीवन सफल होगा।

कवन संजोग मिलउ प्रभ अपने ॥
पलु पलु निमख सदा हरि जपने॥ (बिलावल म: ५, ८०६)

भजहु गुोबिंद भूलि मत जाहु॥
मानस जनम का एही लाहु॥ (भैरउ-कबीर जी- ११५९)
दुलभ देह पाई वडभागी॥
नामु न जपहि ते आतमघाती॥१॥
मरि न जाही जिना बिसरत राम॥

नाम बिहून जीवन कउन काम॥१॥रहाउ॥ *(गउड़ी, मः ५, १८८)*

जिन हरि जपिआ, से हरि होए, हरि मिलिआ केल केलाली॥

(धनासरी, मः ४, ६६७)

नाम का रस

मनुष्य जैसे-जैसे सिमरन करता है, उसका प्रभु के गुणों से मेल होता है। उसे मालूम होता है कि प्रभु, कुदरत की सृजना कर इसमें समाया हुआ है। वो भोजनदाता, जीवनदाता, सब से बड़ा मित्र-सखा, दयालु, कृपालु, भक्तों का रक्षक, भक्तों को प्यार करने वाला, दु:ख हर्ता, सुखदाता, सदा-सहायक, सभी के दिलों की जानने वाला, स्थाई अस्तित्व वाला, सबसे अधिक शक्तिशाली इत्यादि अनगिनत गुणों का मालिक है। प्रभु की विशालता का ज्ञान मनुष्य के मन में उसके लिए प्यार और श्रद्धा की भावना पैदा करता है। प्रभु के आश्चर्य करने वाले गुणों को देख कर मनुष्य 'वाह' 'वाह' कर उठता है और आश्चर्यजनक अवस्था में पहुँच जाता है। ऐसे उसे नाम सिमरन से एक अगंमी और ब्यान न किये जा सकने वाले रस की प्राप्ति होती है। वह जितना नाम सिमरन में जुड़ता है, उतना ही अधिक उसे यह रस प्राप्त होता है। यह रस इतना मीठा और सुखदायक होता है कि इसके समक्ष विश्व के सभी रस, सुख, भोग घटिया लगने लगते हैं। इस रस को मानने वाले के मन में से धन, जायदाद, बेटी-पुत्रों का मोह खत्म हो जाता है, घमंड का अभाव हो जाता है, संसार में सुख-साधनों का आकर्षण समाप्त हो जाता है। इस रस का वर्णन करते हुए सतिगुरु फुर्माते हैं :

हरि बिनु कछू न लागई भगतन कउ मीठा॥
आन सुआद सभि फीकिआ करि निरनउ डीठा॥

(जैतसरी की वार, मः ५, ७०८)

रूप सुंदरीआ अनिक इसतरीआ॥
हरि रस बिनु सभि सुआद फिकरीआ॥ *(आसा मः ५, ३८५)*

जिनि चाखिआ तिसु आइआ सादु॥
जिउ गूंगा मन महि बिसमादु॥ (बिलावल, म: ५, ८०१)

जिसु रसु आइआ सोई जानै॥
पेखि पेखि मन महि हैरानै॥ (प्रभाती, म: ५, १३३८)

हरि रसु पीवत सद ही राता॥
आन रसा खिन महि लहि जाता॥
हरि रस के माते मनि सदा अनंद॥
आन रसा महि विआपै चिंद॥१॥
हरि रसु पीवै अलमसतु मतवारा॥
आन रसा सभि होछे रे॥१॥ रहाउ॥
हरि रसु की कीमति कही न जाए॥
हरि रसु साधू हाटि समाए॥
लाख करोरी मिलै न केए॥
जिसहि परापति तिस ही देहि॥२॥
नानक चाखि भए बिसमादु॥
नानक गुर ते आइआ सादु॥
ईत ऊत कत छोडि न जाए॥
नानक गीधा हरि रस माहि॥३॥२७॥ (आसा, म: ५, ३७७)

साहिब श्री गुरू अमरदास जी अनंदु साहिब में फुरमाते हैं, हे रसना! तू अन्य रसों में रची हुई है, इन रसों से तेरी प्यास नहीं बुझेगी। जब तक हरि-रस की प्राप्ति नहीं होती, तब तक तेरी प्यास नहीं बुझेगी। यदि हरि-रस तुझे मिल जाए और तू उसको पीये तो दोबारा तृष्णा नहीं सताएगी। यह हरि-रस सतिगुरू से उसकी कृपा द्वारा मिलता है। यदि हरि-रस मन में आकर बस जाए तो अन्य

सभी रस भूल जाते हैं:

ए रसना तू अनरसि राचि रही, तेरी पिआस न जाए॥
पिआस न जाए होरतु कितै, जिचरु हरि रसु पलै न पाए॥
हरि रसु पाए पलै, पीऐ हरि रसु, बहुड़ि न त्रिसना लागै आए॥
एहु हरि रसु करमी पाईऐ सतिगुरु मिलै जिसु आए॥
कहै नानक होरि अनरस सभि वीसरे,
जा हरि वसै मनि आए॥३२॥ *(रामकली, म: ३, अंनदु, ९२१)*

श्री गुरू रामदास जी इस बात को दृढ़ कराते है कि नाम-रस की प्राप्ति गुरू द्वारा ही होती है। जो मनुष्य अपने मन की मति को त्याग कर, गुरू की मति धारण करके गुरुमुखि बन जाते हैं और गुरू के बचनों की कमाई करते हैं वे इस हरि-रस को प्राप्त करते हैं:

गुरमखीआ सोहागणी, तिन दइया पई मनि आए॥
सतिगुर वचनु रतंनु है, जो मंने सु हरि रसु खाए॥
से वडभागी वड जाणीअहि, जिन हरि रसु खाधा गुर भाए॥२॥
(सिरीराग, म: ४, ४१)

नाम-सिमरन की बरकतें

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि नाम सिमरन द्वारा प्रभु की प्राप्ति होती है। सिमरन करने वाला क्योंकि प्रभु की स्तुति करता है अथवा उसका गुण गायन करता है, इसलिए उसके मन में ईश्वरीय गुणों का निवास होना प्रारम्भ हो जाता है और उसका स्वभाव प्रभु के स्वभाव जैसा हो जाता है। गुरू फुर्मान है :

जै सिउ राता तैसो होवै॥ *(राग आसा, म: १, ४११)*

जिन हरि जपिआ से हरि होए, हरि मिलिआ केल केलाली॥
(धनासरी, म: ४, ६६७)

नानक हरि जन हरि एके होए हरि जपि हरि सेती रलिआ॥
(वडहंस, म: ४, ५६२)

जिना न विसरै नामु से किनेहिआ ॥
भेदु जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ *(आसा, म: ५, ३९७)*

इसलिए नाम सिमरन द्वारा मनुष्य की नई बनावट बन जाती है। उसके चरित्र का निर्माण होता है, उसमें नये गुण आ जाते हैं और वह अनेक प्रभु कृपा का पात्र बनता है। ये कृपा ही नाम की बरकतें हैं। इनमें से कुछ विशेष बरकतों का वर्णन नीचे किया जा रहा है:-

(क) नाम जपने से सुखों की प्राप्ति और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है; जो मनुष्य प्रभु का नाम सिमरन करते हैं, उनके सोचने के ढंग में परिर्वतन आ जाता है। जिन सांसारिक प्राप्तियों में वह सुख को ढूँढता था, वह वस्तुएं अब (नाम मार्ग अपनाकर) बड़ी तुच्छ लगने लग पड़ती हैं। उसको यह समझ आ जाती है कि सांसारिक सुख और ऐश्वर्य तो अन्त में दु:खों का कारण बनते हैं। उसे अब बोध आ जाता है कि धन-जायदाद की प्राप्ति मन में दूसरों का हक

मारने की रुची पैदा करती है। इसी भावना के अंतर्गत मनुष्य रिश्वतखोर बन जाते हैं, मज़दूरों का हक मारते हैं और डाके डालने लग पड़ते हैं। इस तरह मनुष्य निर्दयता करने लगते हैं और प्रभु से दूर चले जाते हैं। नाम जपने वाला मनुष्य जब परिश्रम की कमाई करता है तो संतोषी बनता है। परिश्रम से जो कुछ प्राप्त करता है, उसी में निर्वाह करता है। उससे उसका मन शांत रहता है और वह सुखी अनुभव करता है। उसका विश्वास बन जाता है कि:

सुखु नाही बहुतै धनि खाटे ॥ सुखु नाही पेखे निरति नाटे॥
सुखु नाही बहु देस कमाए॥ सरब सुखा हरि हरि गुण गाए॥
सूख सहज आनंद लहहु॥
साध संगति पाईऐ वडभागी, गुरमुखि हरि हरि नामु कहहु॥१॥रहाउ॥

(भैरउ, म: ५, ११४७)

माई मेरे मन को सुखु॥ कोटि अनंद राज सुखु भुगवै,
हरि सिमरत बिनसै सभ दुखु॥१॥ रहाउ॥
कोटि जनम के किलबिख नासहि,
सिमरत पावन तन मन सुख॥
देखि सरूपु पूरन भई आसा, दरसनु भेटत उतरी भुख॥

(टोडी, म: ५, ७१७)

इछा पूरकु सरब सुखदाता हरि, जा कै वसि है कामधेना॥
सो ऐसा हरि धिआईए मेरे जीअड़े, ता सरब सुख पावहि मेरे मना॥१॥

(धनासरी, म: ४, ६६९)

जिसु नामु रिदै सोई वड राजा॥
जिसु नामु रिदै तिसु पूरे काजा॥
जिसु नामु रिदै तिनि कोटि धन पाए॥
नामु बिना जनमु बिरथा जाए॥१॥ *(भैरउ, म: ५, ११५५)*

नाम मार्गी, नाम सिमरन को ही सभी मानसिक दुःखों का इलाज मानता है। बहुत से शारीरिक कष्ट भी मानसिक विकारों के कारण पैदा होते हैं। इसलिए वे भी नाम जपने से दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त माया के बुरे प्रभाव का दुःख, पापों के कारण पैदा हुए दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों के कारण पैदा हुए दुःख, प्रभु से दूरी के कारण पैदा हुए दुःख, संसार में 'अपनों' द्वारा किए गए धोखों के कारण दुःख, चिन्ताओं से उत्पन्न दुःख, मृत्यु का दुःख आदि अनेक दुःख हैं, जिनकी दवा केवल नाम ही है। तभी तो ही सतिगुरू जी फुर्मान करते हैं:

लला लावउ अउखध जाहू॥ दुख दरद तिह मिटहि खिनाहू॥
नाम अउखधु जिह रिदै हितावै॥ ताहि रोगु सुपनै नहीं आवै॥
हरि अउखधु सभ घट है भाई॥ गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई॥
गुरि पूरै संजमु करि दीआ॥ नानक तउ फिरि दूख न थीआ॥४५॥

(गउड़ी बावन अखरी, म: ५, २५९)

हरि गुणि गावा, हरि नित चवा गुरमती हरि रंगु सदा माणि॥
हरि जपि जपि अउखध खाधिआ, सभि रोग गवाते दुखा घाणि॥

(सोरठि की वार, म: ४, ६२१)

सरब रोग का अउखदु नामु॥ कलिआण रूप मंगल गुण गाम॥

(गउड़ी, सुखमनी, म: ५, २७४)

अंतरि चिंता नैणी सुखी, मूलि न उतरै भुख॥
नानक सचे नाम बिनु, किसै न लथो दुखु॥

(वार गउड़ी, सलोक म: ५, ३१९)

जिसु तू आवहि चिति, तिसनो सदा सुख॥
जिसु तू आवहि चिति, तिसु जम नाहि दुख॥
जिसु तू आवहि चिति, तिसु कि काड़िआ॥

जिस दा करता मित्र, सभि काज सवारिआ॥६॥

(रामकली की वार, म: ५, ९६०)

(ख) नाम जपने से जीवन में परिर्वतन आ जाता है:- मनुष्य का मन विचारों का संग्रह होता है। जैसे-जैसे ख्याल वह अपने मित्रों-दोस्तों से प्राप्त करता है और पुस्तकें पढ़ कर अपनाता है, वैसा ही उसका स्वभाव बन जाता है। इसीलिए तो कच्ची आयु के बच्चों में इश्क के उपन्यास पढ़ने से उनके मन में कामुक लहरें उठने लग पड़ती हैं। इसके विपरीत धार्मिक साहित्य पढ़ने वाले बच्चों के मन में अपना आचरण उच्च बनाने की भावना पैदा होती है और वे यही सोचते रहते हैं कि इस दुर्लभ जीवन को कैसे सफल किया जाए, कैसे मुक्ति प्राप्त हो, कैसे विकारों से मुक्त हुआ जाए आदि।

इसी तरह जो मनुष्य परमात्मा का नाम सिमरन करते हैं, उसका गुण-गायन करते हैं, उनके मन में प्रभु के लिए प्यार और उसकी संतान में मनुष्य जाति की सेवा भावनाएँ उत्पन होती हैं। इस विषय में प्रो॰ साहिब सिंघ जी लिखते हैं:

'थोड़ा ध्यान से मनुष्य का साधारण जीवन देखें अन्यन्त व्यंग्यमई और दयनीय है। एक दूसरे से घृणा, ईर्ष्या और निन्दा की आग में जल रहे हैं। मज़ेदार बात तो यह है कि अन्यों की निन्दा करने वाला मनुष्य, निन्दा, ईर्ष्या करते समय अपने भीतर जलता रहता है, परन्तु फिर भी यह एक चस्का है कि निन्दा करने सुनने में मनुष्य घंटों समय गुज़ार देता है और ऊबता नहीं।

जिस भाग्यशाली को किसी भले पुरुष की संगति नसीब होती है, वह उस (संगत) की बरकत से सभी में बसते परमात्मा की याद और गुण-गायन करना सीख जाता है। और, यह एक ऐसा स्टीक तीर है कि जिस सौभाग्य हृदय को बेंधता है, उसको ईर्ष्या निन्दा आदि बुरी आदतों से गूँगा-बहरा कर देता है। फिर वह मनुष्य निन्दा करने-सुनने वाली कुसंगति में जाने से रुक जाता है।

इस सम्बन्ध में भक्त कबीर जी फुर्माते हैं:

कबीर गूँगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान॥
पावहु ते पिंगुल भइआ, मारिआ सतिगुर बान॥१९३)
कबीर सतिगुर सूरमे, बाहिआ बानु जु एकु॥
लागत ही भुइ गिरि परिआ, परा करेजे छेकु॥१९४)

(सलोक, कबीर जी के, १३७४)

संसार में कई मनुष्य ऐसे मिल जाते हैं जो धर्मी बनने, भाव केवल बाहरी पवित्रता रखना ही आवश्यक समझते हैं। बाहरी वेश (लिबास) ऐसा धारण करते हैं जिससे लोग उन्हें धर्मी मनुष्य समझें। पर ऐसे मनुष्य प्रभु की सृष्टि से प्यार नहीं करते, पवित्रता-अपवित्रता की भावना से उन लोगों से ईर्ष्या करने लग पड़ते हैं जिनको उन्होंने खुद ही नीचे और घटिया माना है, या जो मनुष्य काल्पनिक नीची जातियों के (अथवा शूद्र) होते हैं।

ऐसे ही एक मनुष्य (वैष्णव साधु) से गुरू नानक देव जी की भेंट पहली प्रचार-यात्रा के समय हरिद्वार में हुई थी। उस वैष्णव ने दिन सूर्य उदय होते समय अपना चौंका तैयार किया, धरती को गोबर से लीपा, लकड़ियों को पानी से धोने के उपरांत, चौंके के इर्द-गिर्द एक लकीर खींची और चूल्हे में आग जलाई। इस समय भाई मर्दाना जी उसके पास आग लेने के लिए गए। उसकी परछाईं साधु के चौंके में पड़ी। साधु इसे कैसे बरदाश्त कर सकता था कि किसी नीच-शूद्र की परछाईं उसके पवित्र चौंके पर पड़े। वह गुस्से में उठा और एक जलती लकड़ी लेकर भाई मर्दाना जी के पीछे दौड़ा। दोनों गुरू जी के पास पहुँचे। गुरू जी ने उस साधु को समझाया कि प्रभु के पैदा किए गए मानव एक समान हैं, ऊँच-नीच की भावना धार्मिक व्यक्तियों के हृदय में नहीं होनी चाहिए और मनुष्य के एक हिस्से (भाग) को शूद्र समझना और उनसे घृणा करना मूर्खता है। यदि घृणा करनी है तो अपने मन में छिपे विकारों

से करें, बुरे अवगुणों और संस्कार त्याग दो, बुरी रुचियां और बुरी आदतें त्याग दो। उसको समझाया कि तूने धर्मी बनकर अपने जीवन में कोई परिर्वतन नहीं किया, बल्कि तू बाहरी पवित्रता में ही लिप्त रहा। तुझे बाहरी दुनिया में मरासी, कसाई, भंगी और चंडाल ही दिखने लगे, जिनके स्पर्श से भी तू अपने आपको बचाता रहा। तुम्हारी इस सोच के कारण ही तेरे में डूमणी, कसाइण, चूहड़ी और चंडालण ने घेरा डाल लिया। बुरी बुद्धि, निर्दयता, पराई निन्दा, क्रोध आदि यही वास्तव में चंडाले हैं जो मनुष्य के मन में आकर उसके जीवन को अपवित्र कर देती हैं। पवित्र चौंके बनाने के लिए चाहे सौ रेखाएँ खींचें, पवित्र होने के लिए अनेकों तीर्थों का स्नान करो, यह भीतरी चुड़ेलें भीतर ही छिप कर बैठी रहेंगी। परमात्मा का नाम सिमरन ही इन चुड़ेलों को मनुष्य के मन से निकाल सकता है। सतिगुरू ने फुर्माया है:

कुबुधि डूमणी, कुदइआ कसाइणि,
पर निंदा घट चूहड़ी, मुठी क्रोधि चंडालि॥
कारी कढी किआ थीऐ, जां चारे बैठीआ नालि॥
सचु संजमु करणी कारां, नावणु नाउ जपेही॥
नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही॥१॥

(सिरी राग की वार, सलोक, म: १, ११)

प्रभु की सौगातों के मोह में फंसा इन्सान प्रभु से दूर होना शुरू कर देता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार को धर्म के रास्ते पर चलने से रोकता है। विकारों की आग जगत में सभी ओर लगी हुई है। क्या मनुष्य और क्या देवते-सभी इस आग में जल रहे हैं।

विकारों से डर कर ही कई लोगों ने इस संसार को माया-नगरी का नाम दिया है। जब सांसारिक वस्तुओं का मोह मनुष्य को प्रभु से दूर ले जाए, तो वे वस्तुएँ 'माया का रूप' हो जाती हैं। संसार

रूपी काजल-कोठरी में माया की कालख से बचना एक कठिन कार्य है। प्रभु का नाम-सिमरन ही मनुष्य को इस कालख से बचा सकता है। संसार में अनेकों ही महापुरुष हुए हैं, जिनके जीवन में नाम-सिमरन की बरकत से आश्चर्यजनक परिवर्तन आया है। माया का मोह उनके निकट नहीं आ सका और काम, क्रोध आदि विकारों की अग्नि उनका कुछ न बिगाड़ सकी। सिमरन की बरकत से इस काजल-कोठरी में वे बेदाग़ सफेद चादर लेकर पार हो गए। गुरू अर्जुन पातिशाह इस परिर्वतन का ऐसे ब्यान करते हैं:

मोह मलन नीद ते छुटकी, कउनु अनुग्रहु भइउ री॥
महा मोहनी तुधु न बिआपै, तेरा आलसु कहा गइउ री॥१॥ रहाउ॥
कामु क्रोधु अहंकारु, गाखरो संजमि कउन छुटिउ री॥
सुरि नर देव असुर त्रै गुनीआ, सगलो भवनु लुटिउ री॥१॥
दावा अगनि बहुतु त्रिण जाले, कोई हरिआ बूटु रहिउ री॥
ऐसो समरथु वरनि न साकउ, ता की उपमा जात न कहिउ री॥२॥
काजर कोठ महि भई न कारी, निरमल बरनु बनिउ री॥
महा मंत्र गुर हिरदै बसिउ, अचरज नामु सुनिउ री॥३॥
करि किरपा प्रभ नदरि अवलोकन, अपुनै चरणि लगाई॥
प्रेम भगति नानक सुखु पाइआ, साधू संगि समाई॥४॥१२॥५१॥

(आसा, म: ५, ३८३)

अर्थ: हे सखी! तू मन को मैला करने वाली मोह की नींद से बच गई है। तुम्हारे ऊपर कौनसी कृपा हुई है ? जीवों के मन को मोह लेने वाली बलशाली माया भी तेरे पर प्रभाव नहीं डाल सकती, तेरा आलस्य भी सदैव के लिए समाप्त हो गया है॥१॥ रहाउ॥

हे बहन! ये काम, क्रोध, यह अहंकार जीवों को बड़ी कठिनाई

देने वाले हैं। तुम्हारे अंदर से इनका किस युक्ति से नाश हुआ है? हे बहन ! भले मनुष्य, देवते, दैत्य सभी त्रिगुणी जीव सारा जगत ही इन्होंने लूट लिया है॥१॥

हे सखी! जब जंगल को आग लगती है, तो घास-फूँस जल जाता है और कोई-कोई हरा वृक्ष ही बचता है। (संसार-जंगल को तृष्णा की अग्नि जला रही है, कोई विशेष आत्मिक बली मनुष्य ही है, जो इस तृष्णा अग्नि से जलने से बचा है।) ऐसे बली मनुष्य की आत्मिक अवस्था मैं वर्णन नहीं कर सकती। मैं बता नहीं सकती कि उस जैसा अन्य और कौन हो सकता है?॥२॥

नोट - उपरोक्त प्रश्न का उत्तर:

हे बहन! मेरे हृदय में सतिगुरू का शब्द-रूपी बड़ा बली मंत्र बस रहा है, मैं आश्चर्यजनक प्रभु का नाम सुनती रहती हूँ इसलिए काजल भरी कोठरी (संसार) में मैं विकारों की कालिख से काली नहीं हुई और मेरा साफ-सुथरा (स्वच्छ) रंग कायम रहा है।३।

हे नानक! (कह कि) हे बहन! प्रभु ने कृपा करके अपनी कृपादृष्टि से मुझे देखा मुझे अपने चरणों में लगा लिया, मुझे उसका प्यार प्राप्त हुआ, मुझे उसकी भक्ति की सौगात मिली, मैं आत्मिक आनन्द भोग रही हूँ और अच्छी-संगति में लिप्त रहती हूँ।४।

(ग) नाम जपने से मन में बे-मुहताजी की भावना पैदा होती है : रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य की वास्तविक आवश्यकता है। इन की प्राप्ति के लिए मनुष्य को काम-धन्धा करना पड़ता है परन्तु मनुष्य यह काम-धन्धा करता-करता, धन प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है। धन का मोह मनुष्य को प्रभु से दूर ले जाता है और मनुष्य प्रभु को भूलकर दुखी होता है एवं भटकता फिरता है। गुरू तेग बहादुर साहिब फुर्माते हैं कि लोभ के कारण अपना स्वाभिमान गंवा कर सुख की आशा में कुत्ते की भांति दर-दर से

फिटकार खाता है:

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की॥

लोभि ग्रसिउ दस हू दिस धावत, आसा लागिउ धन की॥१॥रहाउ॥

सुख कै हेति बहुतु दुखु पावत, सेव करत, जन जन की॥

दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत, नह सुध राम भजन की॥१॥

मानस जनम अकारथ खोवत, लाज न लोक हसन की॥

नानक हरि जसु किउ नहीं गावत,

कुमति बिनासै तन की॥२॥१॥२३३॥ (आसा, म:९, ४११)

(**बिरथा**-दु:ख, पीड़ा। **कहउ**-कहूँ, मैं बताऊं। **सुआन**-कुत्ता। **डोलत**-भटकता फिरता है। **सुध**-सूझ। **अकारथ**-व्यर्थ । **लाज**-शर्म। **कुमति**-बुरी बुद्धि।)

इस तरह धन एकत्र करने की भावना के कारण मनुष्य चापलूस बनता है। जहाँ धन-प्राप्ति की आशा हो, वहाँ जाकर मनुष्यों की जी-हजूरी करने लग पड़ता है और सभी का मोहताज (दूसरों पर निर्भर) हो जाता है। वह सभी को देने वाले दातार प्रभु को भूल कर अन्य कई दाते बना लेता है। उसको ऐसी स्थिति से बाहर निकालने के लिए प्रभु का नाम सिमरन स्तुति ही केवल-एक औषधि है। इसलिये गुरू नानक पातशाह फुर्मान करते हैं कि जिसको प्रभु अपनी स्तुति की दात बख्शिश करता है, वह मनुष्य पातशाहों का पातशाह बन जाता है।

जिसनो बखसे सिफति सालाह॥

नानक पातिसाही पातिसाहु॥२५॥ (जपुजी, ५)

प्रभु का नाम जपने से मनुष्य की सुरति ऊंची आत्मिक-अवस्था में पहुँच जाती है, उसकी रूह किसी की मोहताजी का भार सहन नहीं कर सकती, उसके भीतर से माया (धन-दौलत) की भूख

खत्म हो जाती है। वह अपने दातार प्रभु को कहता है - हे प्रभु! मेरा मन तेरे द्वारा बख्शी दातों से भर गया है, मैं किसी मनुष्य की जी-हजूरी क्यों करूं ? जब तू दुनिया के सभी खज़ाने बख्शने वाला है, तो फिर मैं किसी मानव की चापलूसी क्यों करूं? मैं दर-दर का भिखारी क्यों बनूँ? ऐसे मनुष्य की ऊँची आत्मिक अवस्था का वर्णन सतिगुरू ऐसे करते हैं:

किसु हउ जाची, किसु आराधी, जा सभु को कीता होसी॥
जो जो दीसै वडा वडेरा, सो सो खाकू रलसी॥
निरभउ निरंकारु भवखंडनु, सभि सुख नव निधि देसी॥१॥
हरि जीउ, तेरी दाती, राजा॥
माणसु बपुड़ा किआ सालाही, किआ तिसका मुहताजा॥ रहाउ॥
जिनि हरि धिआइआ, संभु किछु तिस का, तिस की भूख गवाई॥
ऐसा धनु दीआ सुखदातै, निखुटि न कब ही जाई॥
अनदु भइआ सुख सहजि समाणे, सतिगुरि मेलि मिलाई॥२॥
मन, नामु जपु, नामु आराधि, अनदिनु नामु वखाणी॥
उपदेसु सुणि साध संतन का, सभ चूकी काणि जमाणी॥
जिन कउ क्रिपालु होआ प्रभु मेरा, से लागे गुर की बाणी॥३॥
कीमति कउणु करै प्रभ तेरी, तू सरब जीआ दइआला॥
सभु किछु कीता तेरा वरतै, किआ हम बाल गुपाला॥
राखि लेहु, नानकु जनु तुमरा, जिउ पिता पूत किरपाला॥४॥१॥

(सोरठि, म: ५, ६०८)

हे प्रभु! मैं तेरे द्वारा दी हुई दात (देन) से ही तृप्त हो सकता हूँ। मैं किसी बेचारे मनुष्य की बढ़ाई क्यों करता फिरूँ? मुझे किसी मनुष्य की मोहताजी क्यों हो? ॥ रहाउ॥

यदि सब कुछ प्रभु का किया ही होना है, तो फिर मैं किसी

अन्य से क्यों मांगू, क्यों किसी की बनावटी बढ़ाई करूँ? जो भी बड़ा या धनी मनुष्य दिखाई देता है, उसने मरणोपरांत मिट्टी में मिल जाना है। (केवल परमात्मा ने ही सदा कायम रहना है) सारे सुख और संसार के खज़ाने वो निरंकार ही देने वाला है, जिसको किसी का डर नहीं, जो सभी जीवों का जन्म-मरण नष्ट करने वाला है। १।

जो मनुष्य प्रभु का सिमरन करता है संसार की प्रत्येक वस्तु उसकी बन जाती है और परमात्मा उसके भीतर से माया की भूख समाप्त कर देता है। सुखों के दाते प्रभु ने उस मनुष्य को ऐसा नाम-धन दे दिया है, जो कभी भी समाप्त नहीं होता। गुरू ने उसको परमात्मा से जोड़ दिया है और आत्मिक अडोलता के कारण उसके अंदर खुशी प्रकट हो रही है और सभी सुखों की उसे प्राप्ति हो गई है।२।

हे मेरे मन! (तू भी) प्रत्येक समय परमात्मा का नाम सिमरन किया कर, उच्चारण किया कर। महापुरुषों का उपदेश सुनकर यमों की सारी मोहताजी खत्म हो जाती है। परन्तु सतिगुरू की बाणी में वही मनुष्य ध्यान लगाते हैं, जिन पर प्यारा प्रभु आप दयालु होता है।३॥

हे प्रभु! तेरी कीमत (मूल्य) कौन बता सकता है? तू सभी जीवों पर दया करने वाला है। हे गोपाल प्रभु! हमारी जीवों की क्या शक्ति (सामर्थ्य) है? संसार का प्रत्येक कार्य तेरा किया ही होता है। नानक तेरा दास है, तू हमारी रक्षा वैसे ही कर जैसे पिता अपने पुत्रों पर कृपालु हो कर उनकी रक्षा करता है।४।

(घ) नाम जपने से डर और चिन्ताएँ दूर होती हैं और निर्भयता आती है :

संसार में मनुष्य कई प्रकार के डर और चिन्ताओं से ग्रस्त (बुरी तरह जकड़ा) रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य किसी न किसी डर अथवा चिन्ता के कारण परेशान रहता है। बच्चों के मन

में माता-पिता का थोड़ा-सा बिछुड़ना ही डर पैदा कर देता है और वह व्याकुल रहता है। विद्यार्थियों के मनों में परीक्षा का डर रहता है। जो पढ़-लिख जाते हैं, वह अच्छे भविष्य, अच्छे रोज़गार के बारे में ही चिंतित रहते हैं। विवाह होता है तो बच्चों के पालन-पोषण की कई प्रकार की चिन्ताएँ उत्पन्न होती हैं। बच्चों की बीमारी, अच्छे स्कूल में पढ़ाई का प्रबन्ध, अच्छी संगत, आज्ञाकारी रहना, अच्छा रोज़गार मिले, विवाह अच्छे घर में हो, यदि कहीं जीवन साथी अच्छा न मिला तो जीवन बर्बाद हो जाएगा... आदि चिन्ताएँ मनुष्य पर हावी रहती हैं। जब दोस्त मित्र संग-साथ छोड़ जाते हैं अथवा धोखा दे देते हैं, जब भलाई का जबाब बुराई से मिलता है तो मनुष्य परेशान हो उठता है। बुढ़ापे की मुश्किलें और मृत्यु का भय और चिन्ता मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते। परन्तु उपरोक्त स्थिति उन मनुष्यों की होती है, जो प्रभु से नहीं मिलते, प्रभु के स्थान पर अन्य दोस्त-साथियों को ढूंढते हैं, प्रभु की कृपा द्वारा अपनी मुश्किलों का समाधान नहीं करते बल्कि अपनी समझ (बुद्धि) द्वारा ही जीवन सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं। जिन भाग्यशाली मनुष्यों को यह समझ पड़ जाती है कि मन को दृढ़ रखने के लिए अकाल पुरुष की याद का पल्ला पकड़ना ज़रुरी है, नहीं तो मन की स्थिति डर वाली बनी रहेगी, वह प्रभु की सिफत-सलाह में जुट जाते हैं। धीरे-धीरे उनका यह विश्वास पक्का हो जाता है कि:

निरभउ जपै, सगल भउ मिटै॥ (गउड़ी सुखमनी, म: ५, २९३)

जिन निरभउ, जिन हरि निरभउ धिआइआ जी,
तिन का भउ सभु गवासी॥ (आसा, म: ४,११)

हरि बिनु कोई मारि जीवालि न सकै
मन होए निचिंद, निसलु होए रहीऐ॥ (वडहंस की वार, म: ४, ५९४)

सो कत डरै जि खसमु समारै॥
डरि डरि पचे, मनमुख वेचारे॥१॥ रहाउ॥ (धनासरी, म: ५, ६८८)

भै महि रचिउ सभु संसारा॥

तिसु भउ नाही, जिसु नामु अधारा॥१॥

भउ न विआपे तेरी सरणा॥ जो तुधु भावै सोई करणा॥१॥ रहाउ॥

(गउड़ी, म: ५, १९२)

प्रभु की याद का पल्लू पकड़ने से प्रभु की शरण प्राप्त होती है अथवा विश्वास बंध जाता है कि प्रभु सदैव अंग-संग है सब से बड़ा मित्र-सखाई है और दुनिया का दु:ख रोग तब ही आता है जब परमात्मा का नाम भूल जाए। परमात्मा की स्तुति करने से मन में सदैव खुशी बनी रहती है। प्रभु की शरण में आने से, प्रभु की रज़ा (इच्छा) प्यारी लगने लग जाती है और कोई डर शंका निकट नहीं आती। पंचम पातशाह फुर्मान करते हैं :

हरि का नामु रिदै नित धिआई॥ संगी साथी सगल तरांई॥१॥

गुरु मैरै संगि सदा है नाले॥ सिमरि सिमरि तिसु सदा सम्ाले॥१॥ रहाउ॥

तेरा कीआ मीठा लागै॥ हरि नामु पदारथु नानक मांगै॥२॥४२॥९३॥

(आसा, म: ५, ३९४)

पंचम पातशाह एक अन्य शब्द में फुर्माते हैं कि प्रभु ही सब से बड़ा आधार है, जो मनुष्य उसकी सिफत-सलाह (स्तुति) करता है वह बलशाली बन जाता है, दुश्मनों पर विजय प्राप्त करता है; दु:ख, भूख और गरीबी से छुटकारा पाता है, चिन्ता से मुक्त होता है, विकार उसके निकट नहीं आते और वह संसार सागर को सरलता से पार कर जाता है। गुरू वाक्य है :

जा कउ मुसकलु अति बणै ढोई कोइ न देइ॥

लागू होए दुसमना, साक भि भजि खले॥

सभो भजै आसरा, चुकै सभु असराउ॥

चिति आवै उसु पारब्रहमु, लगै न तती वाउ॥१॥

साहिब, निताणिआं का ताणु

आइ न जाई थिरु सदा, गुर सबदी सचु जाणु ॥१॥ रहाउ॥
जे को होवै दुबला नंग भुख की पीर॥
दमड़ा पलै न पवै, ना को देवै धीर॥
सुआरथु सुआउ न को करे, ना किछु होवै काजु॥
चिति आवै उसु पारब्रहमु, ता निहचलु होवै राजु॥२॥
जा कउ चिंता बहुतु बहुतु, देही विआपै रोगु॥
ग्रिसति कुटंबि पलेटिआ, कदे हरखु कदे सोगु॥
गउणु करे चहु कुंट का, घड़ी न बैसणु सोए॥
चिति आवै उसु पारब्रहमु, तनु मनु सीतलु होए॥३॥
कामि करोधि मोहि वसि कीआ, किरपन लोभि पिआरु ॥
चारे किलविख उनि अघ कीए, होआ असुर संघारु॥
पोथी गीत कवित किछु, कदे न करनि धरिआ॥
चिति आवै उसु पारब्रहमु, ता निमख सिमरत तरिआ॥४॥१॥२६॥

(सिरी रागु, म: ५, ७०)

अर्थ : जिस मनुष्य को कोई भारी विपत्ति आन पड़े और कोई मनुष्य उसको सहारा (मदद) भी न दे, दुश्मन पीछे पड़ जाएं, उसके रिश्तेदार-सम्बंधी उससे दूर हो जाएं, यदि उस (विपत्ति-मारे) मनुष्य के हृदय में परमात्मा की याद है तो उसका बाल भी बांका नहीं होता।२॥

मालिक-प्रभु निर्बलों का आधार है, वह न जन्मता है और न मरता है। सदैव ही कायम (स्थिर) रहने वाला है। (हे-भाई) गुरू के शब्द में जुड़ कर उस सदैव स्थिर रहने वाले प्रभु से गहरी मित्रता बना॥१॥ रहाउ॥

यदि कोई मनुष्य ऐसा निर्बल हो कि भूख नग्नता का दुःख उसको हर समय सताता रहे, उसके पल्ले पैसा न हो, कोई मनुष्य

उसे धैर्य न बंधाये, कोई मनुष्य उसकी आवश्यकता पूरी न करे, उससे अपना कोई काम पूर्ण न हो (ऐसी दुर्दशा में होते भी) यदि परमात्मा उसके मन में आ बसे, तो उसका अटल राज्य बन जाता है (भाव उसकी आत्मिक अवस्था ऐसे बादशाहों वाली हो जाती है जिनका राज्य कभी न डोले)।२॥

जिस मनुष्य को प्रत्येक समय अधिक चिन्ता बनी रहे, जिसके शरीर को कोई रोग लगा रहे, जो गृहस्थ और परिवार के जंजाल में फंसा रहे, जिसको कभी कोई खुशी और कभी कोई गम घेरा डाले रहे, जो मनुष्य धरती पर इस तरह भटकता फिरता है कि उसको पल भर बैठना नसीब न हो, परन्तु यदि परमात्मा उसके मन में आ बसे, तो उसका मन शान्त हो जाता है और उसका मन (संतोष से) शीतल हो जाता है।

यदि किसी मनुष्य को काम, क्रोध, मोह ने अपने वशीभूत किया हो, यदि उस कंजूस का प्यार सदैव लोभ में ही हो, यदि उसने विकारों के वश होकर चारों महापाप किए हों, यदि वह इतना नीच हो गया हो कि उसको मार देना ही अच्छा हो, यदि उसने कभी भी कोई धर्म-पुस्तक, कोई धर्म-गीत, कोई धार्मिक कविता न सुनी हो, यदि परमात्मा उसके मन में आ बसे तो वह पलक झपकते जितने समय के लिए ही प्रभु का स्मरण करके इन सभी विकारों के समुद्र से पार हो जाता है।४।

भारतीय समाज कई तरह के अंध-विश्वासों और गलत धार्मिक विश्वासों के कारण डरपोक बन गया था। इन विश्वासों में देवी-देवताओं की क्रोधता का डर, कुदरती बाधाओं का डर, भूत-प्रेतों का डर, धार्मिक मान्यता की अवज्ञा के कारण आने वाली मुसीबतों का डर, साधु-संतों के श्राप का डर, जादू-टोना का डर, जन्त्रों-मंत्रों का डर, यम और नर्क का डर आदि मुख्य विश्वास थे। डर के कारण लोग इतने निर्बल हो चुके थे कि मुट्ठी भर विदेशी

हमलावर यहाँ के लाखों निवासियों को ग़ुलाम बनाने में सफल हो गए। यहाँ के लोग प्रत्येक प्रकार के अत्याचार को सहन करने के स्वभाव वाले बन गए। कोई बेटी-बहनों की इज़्ज़त लूट ले, धार्मिक स्थलों को गिरा दे, धार्मिक पुस्तकों की बेइज्जती करे, धनमाल लूट ले, यहाँ के लोगों पर उसका कोई असर नहीं पड़ता था। हमलावर देशवासियों की हज़ारों की गिनती को कत्ल कर दे, ग़ुलाम बनाकर अपने देश ले जाए, कोई बोलता तक नहीं था। यहाँ तक की अपने आप को 'राजे' कहलाने वाले वीर बहादुर भी हमलावरों को अपनी बेटी-बहनों की डोली देकर (शादी करके) अपनी जान छुड़ाते थे।

ऐसे समाज में हमारे महान सतिगुरों ने 'सतिनाम' का नाम जपा कर, भाव मनुष्य को प्रभु से जोड़कर, उनके अन्ध-विश्वासों का नाश किया, उनके भीतर प्रभु-गुणों को प्रकट किया और वह निर्भय प्रभु को जप कर निडर हो गए। सिमरन की शक्ति से उनका यह विश्वास बन गया कि परमात्मा प्रत्येक स्थान पर सर्वव्यापक है, भक्तों की रक्षा करता है और अन्य कोई मनुष्य किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता इसलिए उनके मन से डर और हार के भाव जाते रहे और ऐसे मनुष्यों का एक समाज बना सिख समाज। वही व्यक्ति जो तलवार के सामने काँपते थे, प्रभु के नाम-सिमरन की शक्ति द्वारा, केवल एक प्रभु के आसरे के विश्वास से, रणभूमि में आ गए, दुष्टों का विनाश किया और अपना राज्य कायम किया। ऐसा राज्य जिसके न्याय (इन्साफ) की प्रशंसा दुश्मन भी करते नहीं थकते थे। यह है नाम-सिमरन की शक्ति! यह है नाम-जपने की करामात!

(ड़) नाम जपने से मन में निरवैरता की भावना जागती है:

प्रभु का नाम जपने वालों को यह सूझ आ जाती है कि उसका प्रियतम प्यारा सर्वव्यापक है, वह प्रत्येक स्थान पर मौजूद है, जीव में उसकी ही ज्योति है। प्रभु-प्यार में रंगा हुआ प्रत्येक मनुष्य

प्राकृति की प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक जीव-जन्तु में प्रभु को रमा देखता है। उसको प्रभु के बग़ैर कुछ दिखाई नहीं देता और दशम पातशाह की भांति प्रभु-प्यार में लिप्त हुआ कहता है:

जलस तुही॥ थलस तुही॥ नदिस तुही निदसु तुही ॥१३॥
ब्रिछ्स तुही॥ पतस तुही॥ छितस तुही॥ उरधस तुही॥१४॥
भजस तुअं॥ भजस तुअं॥ रटस तुअं॥ ठतस तुअं॥१५॥
जिमी तुही॥ जमा तुही॥ मकीं तुही॥ मकां तुही॥१६॥
अभू तुही॥ अभै तुही॥ अछू तुही॥ अछै तुही॥१७॥
जतस तुही॥ ब्रतस तुही॥ गतस तुही॥ मतस तुही॥१८॥
तुही तुही॥ तुही तुही॥ तुही तुही॥ तुही तुही॥१९॥
तुही तुही॥ तुही तुही॥ तुही तुही॥ तुही तुही॥२०॥७०॥

(अकाल स्तुति)

अर्थ : जलस-पानी में। **थलस**-धरती के ऊपर। **नदिस**-नदियों में। **निदसु**-समुँद्र। **ब्रिछसु**-दरखत (वृक्ष)। **पतस**-पत्ते। **छितस**-धरती। **उरधस**-आकाश। **ठतस तुअं**-तेरा ही ठाठ बना हुआ है। **मकीं**-मकान में बसने वाला। **मकां**-(संसार-रूपी) मकान।

अपने अनुभव को ब्यान करते हुए भगत नाम देव जी भी यही कहते हैं कि केवल एक अकाल पुरुष ही संसार के जीव-जन्तुओं का रूप धारण किए हुए है-मैं जहां भी देखता हूं, वहां ही अकाल पुरुष के दर्शन होते हैं। वह प्रत्येक जगह मौजूद है परन्तु इस भेद को कोई विरला मानव ही समझता है, क्योंकि जीव आम तौर पर माया के रंगों के रूपों में अच्छी तरह जकड़े हुए हैं। प्रत्येक स्थान पर परमात्मा है, परमात्मा के बगैर कोई स्थान नहीं, जैसे एक धागा हो और उसमें सैंकड़ों हज़ारों मनके पिरोये हुए हों, इसी तरह जीवों में परमात्मा की जीवन-सत्ता मिली हुई है:

एक अनेक बिआपक पूरक, जत देखउ तत सोई॥

माइआ चित्र बचित्र बिमोहित, बिरला बूझै कोई॥१॥
सभु गोबिंदु है, सभु गोबिंदु है, गोबिंद बिनु नही कोई॥
सूतु एक, मणि सत सहंस जैसे, ओति पोति प्रभु सोई॥१॥ रहाउ॥

(आसा, श्री नामदेव जी, ४८५)

भगत नामदेव जी एक अन्य शब्द में फुर्माते हैं कि सभी के हृदयों में अकाल-पुरुष ही बोलता है, उसके बगैर और कोई नहीं बोलता। जैसे मिट्टी से भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तन बनाए जाते हैं, वैसे ही भिन्न-भिन्न जीव एक प्रभु का अंश हैं। बड़ा हाथी और छोटी-सी चींटी उसी का रूप हैं। वृक्षों, मनुष्यों, कीटों, पतंगों – सभी में प्रभु समाया हुआ है। उसका ही जाप करो और अन्य आशाएँ त्याग दो:

सभै घट रामु बोलै, रामा बोलै॥
राम बिना को बोलै रे॥१॥ रहाउ॥
एकल माटी कुंजर चीटी, भाजन हैं बहु नाना रे॥
असथावर जंगम कीट पतंगम ,
घटि घटि रामु समाना रे॥१॥२॥३॥

(माली गउड़ा, भगत नामदेव जी, ९८८)

नाम सिमरन की शक्ति से जो मनुष्य प्रत्येक प्राणी में अकाल पुरुष की ज्योति को देखता है, उसके अंदर से अपने-पराए का भेद मिट जाता है। भगत कबीर जी भी यही कहते हैं कि हे प्रभु, तेरी सिफत-सलाह की शक्ति से (तू तू करते हुए) मुझे प्रत्येक ओर तू ही नज़र आता है, घमंड मिट गया है और अपने-पराए की भावना मिट गई है:

कबीर तूं तूं करता तू हूआ, मुझ महि रहा न हूँ॥
जब आपा पर का मिटि गइआ, जत देखउ तत तूं॥२०४॥

(श्लोक, भगत कबीर जी, १३७५)

तूं ही तूं की नदी में डुबकी लगाने वाला मनुष्य प्रत्येक ओर उस प्रभु को ही देखता है। उसको कोई बेगाना नहीं दिखाई देता, कोई दुश्मन नहीं लगता। उसकी ऊँची आत्मिक अवस्था का ज़िक्र पंचम पातशाह के शब्दों में ऐसे प्रकट होता है:

करि किरपा दीउ मोहि नामा, बंधन ते छुटकाए॥
मन ते बिसरिउ सगलो धंधा, गुर की चरणी लाए॥१॥
साध संगि चिंत बिरानी छाडी॥
अहंबुधि मोह मन बासन, दे कर गडहा गाडी॥१॥ रहाउ॥
ना को मेरा दुसमनु रहिआ, ना हम किस के बैराई॥
ब्रहमु पसारु, पसारिउ भीतरि, सतिगुर ते सोझी पाई॥२॥
सभु को मीतु हम आपन कीना, हम सभना के साजन॥
दूरि पराइउ मन का बिरहा, ता मेलु कीउ मेरै राजन॥३॥
बिनसिउ ढीठा, अम्रित वूठा, सबदु लगो गुर मीठा॥
जलि थलि महीअलि सरब निवासी, नानक रमईआ डीठा॥४॥३॥

(धनासरी, म: ५, ६७१)

अर्थ: हे भाई! साध-संगति में आ कर मैने पराई आस छोड़ दी है। घमंड माया का मोह, मन की वासना इन सभी को गड्ढा खोदकर दबा दिया है। रहाउ।

हे भाई! साध-संगति ने कृपा करके मुझे परमात्मा का नाम दिया और गुरू के चरणों में लगा कर मुझे माया के बंधनों से छुड़ा लिया, जिस कारण मेरे मन से सारा झगड़ा-झमेला उतर गया।१।

हे-भाई! साध-संगति की बरकत (शक्ति) से मेरा कोई दुश्मन नहीं रह गया (मुझे कोई बैरी नहीं दिखता), मैं भी किसी का वैरी नहीं बनता। मुझे गुरू से यह समझ प्राप्त हो गई है कि यह सारा जगत-पसारा परमात्मा आप ही है। सभी के भीतर परमात्मा ने आप

ही आपने आपको फैलाया हुआ है।२।

हे भाई! साध-संगति की कृपा से मेरे मन का ढीठपन खत्म हो गया है, मेरे भीतर आत्मिक जीवन देने वाला नाम-जल आ बसा है, गुरू का शब्द मुझे प्यारा लग रहा है। हे नानक ! (कह हे भाई!) अब मैं धरती में, आकाश में, सभी जगह बसने वाले (रहने वाले) सुन्दर राम को देख रहा हूँ।४।

(च) नाम जपने से मन में गरीबों और कथित नीच मनुष्यों के प्रति उच्च-स्तर की हमदर्दी पैदा होती है:

नाम जपने वाला मनुष्य अपने गुरू के चरणों से लगकर प्रभु की सिफत-सलाह (प्रशंसा) करता है, भाव गुरू-शब्द की ओट (आड़) लेता है अथवा गुरबाणी का प्यार और श्रद्धा सहित पाठ और कीर्तन करता है। ऐसे नाम जपते उसको गुरू की कृपा से प्रभु के स्वभाव का पता लगता है। उसे गुरबाणी यह सूझ देती है कि जहाँ नीच कहे जाने वाले मनुष्यों की सेवा-सम्भाल होती है, वहाँ प्रभु की कृपा की दृष्टि होती है। वह गुरू नानक पातशाह के साथ मिल कर गाते है:

नीचा अंदरि नीच जाति, नीची हू अति नीचु॥
नानकु तिन कै संगि साथि, वडिआ सिउ किआ रीस॥
जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस॥४॥३॥

(सिरी रागु, म: १, १५)

सभी मनुष्य प्रभु की संतान हैं परन्तु जो मनुष्य अन्यों के मुकाबले निर्बल हैं, किसी पक्ष से कमज़ोर हैं, लाचार हैं, प्रभु उन की ओर अधिक ध्यान देता है, उन की विनय-प्रार्थना पहले सुनता है। दशम पिता जी प्रभु के विषय में कहते हैं कि वह बलशाली हाथी के मुकाबले निर्बल चींटी की पुकार पहले सुनता है :

हाथी की चिंघार पल पाछै पहुचत ताहि
चीटी की पुकार पहिले ही सुनीअतु है॥

प्रभु का नाम सिमरन करने वाले मानवों का दिल भी अधिक नम्र हो जाता है, गरीबों-दु:खियों का दर्द देखकर तड़प उठता है। अपनी तीसरी प्रचार-फेरी (उदासी) के समय जब गुरू नानक देव जी मक्का-बगदाद से वापिस आते हुए ऐमनाबाद पहुँचे तो उस समय बाबर ने सियालकोट को फतह करके ऐमनाबाद पर धावा बोल दिया। शहर में बड़ी कत्लोगार्द हुई। शहर जलाया गया और फूँका गया, स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की गई, लोग तड़पने लगे। ऐसे समय में प्रभु के सच्चे आशिक सतिगुरू ने गरीबों-अनाथों की बाजु पकड़ी, उनका साथ दिया और बाबर को पाप की जंग (बारात) लाने वाला जाबर कहा। ज़ुल्मों के शिकार हुए लोगों का साथ देने के कारण ही सतिगुरू और भाई मर्दाना जी को बाबर की जेल काटनी पड़ी। प्रभु के गीत गाने वाले सतिगुरू ने इस समय 'खून के सोहले' गाए। सतिगुरू ने एक नाम-रसिए के कर्त्तव्य को निभाकर यह समझाया कि नाम-रसिए वे नहीं हैं जो जंगलों बेलों में जा कर, समाधि लगाकर बैठ जाते हैं, बल्कि वास्तिवक नाम-रसिए वे हैं जो गरीबों, निर्बलों, बेसहारा लोगों की बाजु पकड़ते हैं और उनकी खातिर अपने तन पर दु:ख झेलते हैं।

गरीब, कमज़ोर और अनाथों की बांह पकड़नी नाम-जपने वाले मनुष्य का स्वभाव ही बन जाता है। इसी स्वभाव के अधीन गुरू अर्जुन देव जी और गुरू तेग बहादुर जी ने शहीदी प्राप्त की और साहिब श्री गुरू गोबिंद सिंघ जी ने हाथ में तलवार पकड़ी।

(छ) नाम जपने से स्वाभिमान और वीरता जाग पड़ती है:

इस संसार का खेल निराला है। प्रभु ने तो सभी को बराबर के मनुष्य ही पैदा किया है, परन्तु मनुष्यों ने ऊंची-नीची जाति, कुल, अमीरी-गरीबी आदि में बाँट दिया है। भारत में जाति-प्रथा को

धार्मिक मान्यता मिली हुई है। प्राचीन धार्मिक पुस्तकों ने समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बांटा हुआ था। ब्राह्मण समाज का शिरोमणि अंग थे और शूद्र सब से घटिया। स्मृतियों और शास्त्रों के प्रचार की बदौलत ब्राह्मणों को कोई काम नहीं करना पड़ता था, केवल पाठ-पूजा करना और लोगों के दान से जीवन-निर्वाह करना उनका अधिकार और कर्त्तव्य था। बुरे आचरण का मालिक ब्राह्मण भी पूजने-योग्य माना जाता था। इसके विपरीत शूद्र नीच गिने जाते थे (चाहे वह कितने ही सदाचारी हों?) सभी नीच कहे जाने वाले काम उनसे करवाए जाते थे। समाज की निष्काम सेवा के बदले भी उन्हें दुत्कारा जाता था, उन्हें शेष लोगों के टुकड़ों पर पलने के लिये विवश किया जाता था ताकि उनकी भूख-नग्नता जारी रहे। धर्म-पुस्तकें पढ़ने और विद्या-प्राप्ति का अधिकार उन्हें नहीं था। उनके घर भी एक तरफ होते थे। उनके छूने अथवा परछाईं पड़ने से मनुष्य अपवित्र हो जाता था। समाज के इस बर्ताव ने उनके मन में घटियापन का आभास, नीच होने का अहसास, जी-हज़ूरी करने की भावना और ग़ुलामी की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। आज चाहे लोग पढ़-लिख कर सूझवान हो गए हैं और देश की स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने भी समाज के इस वर्ग (अछूत, पिछड़ी जाति को लोगों) को विशेष लाभ दिए हैं, फिर भी इनके मन में उपरोक्त भावनाएं मौजूद हैं। गाँव के उच्च-जाति के लोग आज भी इनसे घृणा करते हैं और इन पर ज़ुल्म करते हैं।

ऐसी स्थिति समाज में उन लोगों की भी रही है जो रुपए पैसे के पक्ष में कमज़ोर थे, अर्थात् निर्धन थे। धनवान सदियों से ही निर्धनों से बुरा व्यवहार करते आ रहे हैं, उनसे अपने पशुओं से भी ज़्यादा बुरा व्यवहार करते हैं। निर्धनों (गरीबों) के भीतर भी घटिया होने का अहसास और ग़ुलामी के संस्कार मौजूद रहते हैं।

पर जो मनुष्य प्रभु के नाम-सिमरन में लग जाते हैं उनके मन में नीचापन, गरीबी, ग़ुलामी आदि की भावनाएं समाप्त हो जाती हैं

और मन के अंदर, स्वामीमानता, शौर्य और मनुष्यता जाग पड़ती है। नीचों में ऊँच को ललकारने वाले पैदा हो जाते हैं और गरीबों में अमीरों की लूट-खसूट और ज़ोर ज़बरदस्ती के विरुद्ध लड़ने वाले पैदा है जाते हैं। ऐसे लोग (नाम-रसिए) प्रत्येक शरीर में प्रभु का निवास जान कर सभी से प्यार करते हैं।

भक्ति-मार्ग पर चलने वालों का इतिहास पढ़ें तो पता चलता है कि जिन काल्पनिक नीची जाति वालों ने प्रभु का नाम सिमरन किया, उनकी काया पलट गई और उनके भीतर स्वामिभान जाग पड़ा।

भक्त नामदेव जी के नाम से हम सब लोग जानते हैं। नीची जाति के होने के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें मन्दिर में से धक्के देकर निकाल दिया था। उन्होंने इस निरादरी को अपने अन्य जाति भाइयों की तरह सहन नहीं किया बल्कि मन्दिर से बाहर आकर अपने प्रभु प्रियतम को आगे शिकवा किया। कहने लगे-देख मेरे सुन्दर राम! ऊँची जाति के गर्व में ये लोग मेरे ऊपर क्रुद्ध हो गए हैं और शूद्र-शूद्र कहकर मुझे मन्दिर से बाहर निकाल दिया। मुझे इस भरोसे का क्या फायदा कि तेरी भक्ति के कारण मुझे मुक्ति मिल जाएगी ? उस मुक्ति को कौन जानेगा ? तेरे भक्त को लोग शूद्र कह रहे हैं। उस में तेरी ही निरादरी है :

मो कउ तूं न बिसारि, तू न बिसारि॥ तू न बिसारे रामईआ॥१॥ रहाउ॥
आलावंती इहु भ्रमु जो है, मुझ ऊपरि सभ कोपिला॥
सूदु सूदु करि मारि उठाइउ, कहा करउ बापु बीठुला॥१॥
मूए हूए जउ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोइला॥
ए पंडीआ मो कउ ढेढ कहत, तेरी पैज पिंछउडी होइला॥२॥
तू जु दइआलु क्रिपालु कहीअतु हैं, अतिभुज भइउ अपारला॥
फेरि दीआ देहुरा नामे कउ, पंडीअन कउ, पिछवारला॥३॥२॥

(पन्ना ११९२)

अर्थः न बिसारि-न विसार। **रामईआ**-हे सुन्दर राम। **आलावंती**-(**आलय**-घर, ऊँची जाति) हम ऊँचे घराने के हैं, ऊँची जाति वाले है। **भ्रमु**-भुलावा। **कोपिला**-क्रोध किया है, क्रोधित हो गए हैं। **सूदु सूदु करि**-शूद्र-शूद्र कहकर। **मारि**-मार कुटाई करके। **कहा करउ**-क्या करूँ? **बापु बीठुला**-हे प्रभु-पिता (बीठुल जो माया के प्रभाव से दूर है।) **कोइला**-कोई भी। **पंडीआ**-पांडे, पुजारी। **ढेढ**-नीच। **पैज**-इज्जत। **पिंछउडी होइला**-पिछोतनी हो रही है, पीछे पड़ रही है, कम हो गई है। **अतिभुज**-बड़ी भुजाओं वाला, महाबली। **अपारला**-बेअंत।

जब चमार-चमार कह कर भक्त रविदास जी की बेइज्ज़ती करने का यत्न किया गया तो उन्होंने हँस कर कहा-लोग अपने भीतर नहीं झांकते कि इस शरीर-रूपी जूती को सदैव अच्छी खुराक (भोजन) दवाएं आदि के टांके और गाँठें लगाने के नित्यक्रम के कारण चमार बने हैं। मैं तो सिर्फ जन्म का चमार था, परन्तु मुझे लाँछन लगाने वाले कर्म से ही चमार हो चुके हैं। मेरे पास शारीरिक मोह की 'आर' (सुई) नहीं है, न ही मैं लोभ-लालच के वश होकर नित्य शारीरिक धंधे की टांकी लगा रहा हूँ। मुझसे टिचरें (मज़ाक) करने वाला संसार इस चमारपने में ख्वार हो रहा है। मैं शरीर-रूपी जूती के गांठें तोपे छोड़कर परमात्मा के चरणों में जुड़ने का आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ :

चमरटा गांठि न जनई॥ लोगु गठावै पनही॥१॥ रहाउ॥

आर नहीं जिह तोपउ॥ नही रांबी ठाउ रोपउ॥१॥

लोगु गंठि गंठि खरा बिगूचा॥

हउ बिनु गांठे जाए पहूचा॥२॥

रविदास जपै राम नामा॥

मोहि जम सिउ नाही कामा॥३॥७॥

(सोरठि, भक्त रविदास जी, ६५९)

अर्थः चमरटा-गरीब चमार। **गांठि न जानई**-गाँठना नहीं जानता। **गठावै**-गाँठता है। **पनही**-जूती। **तोपउ**-मैं तोपा लगाऊँ। **ठाउ**-जगह, जूती की टूटी जगह। **रोपउ**-मैं टाकी लगाउँ। **गंठि-गंठि**-गांठ गांठकर। **खरा**-बहुत। **बिगूचा**-खवार हो रहा है। बिना गांठे (शरीर रुपी जूती को) गाँठने का काम छोड़ कर। **कामा**-वास्ता।

अर्थः मैं गरीब चमार शरीर रूपी जूती को गाँठना नहीं जानता परन्तु जगत के जीव अपनी-अपनी (शरीर रूपी)जूती गाँठ रहे हैं (लोग दिन रात केवल शरीर की पालना के काम में लगे रहते हैं)। रहाउ। मेरे पास 'सूई' नहीं कि मैं जूती को तोपे लगाऊँ? (भाव मेरे भीतर मोह की खींच नहीं कि मेरी सुरति सदैव शरीर में ही स्थित रहे। मेरे पास 'रंबी' नहीं कि जूती को टुकड़ा लगा सकूँ (मेरे मन में लोभ नहीं कि अच्छे-अच्छे खाने लाकर नित्य शरीर का पालन करता रहूँ)।१। जगत गाँठ-गाँठ कर खवार हो रहा है। (भाव, जगत के जीव अपने अपने शरीर को दिन रात पालन-पोषण के काम में दुःखी हो रहे है), मैं गाँठने का काम छोड़कर, प्रभु चरणों में पहुँच गया हूँ।२।

रविदास अब परमात्मा का नाम जपता है (और शरीर का मोह छोड़ बैठा है, इसलिए) रविदास को यमों से कोई लेना-देना नहीं रह गया है।३।

भक्त कबीर जी ने भी ऊँची जाति के लोगों को खरी खरी सुनाई हैं। जब किसी जाति अभिमानी ब्राह्मण ने उनका शूद्र-जन्म बताकर नीचा दिखाने की कोशिश की, तो कबीर जी मनुष्यता की निरादरी सहन ना कर सके। वह ब्राह्मण को ललकार कर कहने लगे:

गरभ वास महि कुलु नहीं जाती॥
ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती॥१॥
कहु रे पंडित बामन कब के होए॥

बामन कहि कहि जनमु मत खोए॥१॥रहाउ॥

जौ तूं ब्राहमण ब्रहमणी जाइआ॥

तउ आन बाट कोहे नही आइआ॥२॥

तुम कत ब्राहमण, हम कत सूद॥

हम कत लोहू, तुम कत दूध॥३॥

कहु कबीर जो ब्रहम बीचारै॥

सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारै॥४॥१॥ (गउड़ी, कबीर जी, ३२४)

अर्थः सभी जीवों की उत्पति परमात्मा के अंश से ही रही है (भाव, सभी का मूल कारण परमात्मा आप है) मां के पेट में तो किसी को पता नहीं होता कि मैं किस कुल का हूँ॥१॥

बता हे पंडित! तू ब्राह्मण कब से हो गया है? यह कह कर कि मैं ब्राह्मण, मैं ब्राह्मण हूँ, तू मनुष्य जन्म निष्फल न गंवा॥१॥ रहाउ॥ यदि हे पंडित सचमुच (वास्तव में) ब्राहम्ण हैं, और ब्राह्मणी के पेट में से जन्मा है तो किसी ब्राह्मण अन्य रास्ते से क्यों जन्म नहीं लिया?।२॥ हे पंडित ! तुम कैसे ब्राह्मण बन गए ? हम कैसे शूद्र रह गए। हम केवल 'लहू' (रक्त) कैसे हैं? तुम केवल 'दूध' कैसे हो? हे कबीर, ऐसे कह : हम तो उस मनुष्य को ब्राह्मण कहते हैं, जो परमात्मा-रूपी ब्रह्म का स्मरण करता है।।४॥

(ज) नाम जपने से जाति-पाति और अमीरी-गरीबी का फासला दूर होता हैः

धनवान बनने के लिए अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं; अनेक प्रकार की हेरा-फेरी (धोखा-धड़ी) और पाप-कर्म करने पड़ते हैं। गुरू नानक साहिब जी का फुर्मान हैः

पापा बाझहु होवै नाही, मुइआ साथि न जाई॥

माया, धन, (दौलत) को सम्भाल कर रखने के लिए भी बड़ा

आत्मिक मूल्य चुकाना पड़ता है। खुल-दिली दूर हो जाती है, कंजूसी से आपस में फ़र्क पड़ जाता है। मनुष्य जितना अमीर होता जाता है उतना ही दिल से कंगाल होता जाता है। आत्मिक गुणों का खज़ाना खाली करके, रुपयों से भरे खज़ाने यदि खाली हो जाएँ तो दु:ख भी अत्याधिक होता है। सतिगुरू फुर्मान करते हैं:

दुखी दुनी सहेड़ीऐ जाए त लगहि दुख॥

नानक सचे नाम बिनु, किसै न लथी भुख॥२॥

(वार मलार, म: १, १२८७)

जो मनुष्य नाम जप कर प्रभु से सांझ (मेल) बना लेते हैं उनका दिल बड़ा हो जाता है, तंग-दिली उनके पास नहीं आती, वे सभी से प्यार करते हैं, वे सभी के दु:ख दर्द के सहभागी बनते हैं। दुनिया को मोह लेने वाला धन उनके लिए एक तुच्छ वस्तु बन जाता है और जिनके पास नाम-धन नहीं, उनको निर्धन ही समझते हैं:

कहि कबीर निरधनु है सोई॥ जा के हिरदै नामु न होई॥

(भैरउ, कबीर जी, ११५९)

गुरू नानक पातिशाह इन विचारों की पुष्टि इस प्रकार करते हैं:

जिन कै पलै धनु वसै, तिन का नाउ फकीर॥

जिन, कै हिरदै तू वसहि, ते नर गुणी गहीर॥

(वार मलार श्लोक, म: १, १२८७)

परमात्मा का नाम अमीरी और गरीबी का अन्तर मिटा देता है। केसर, फूल, कस्तूरी और सोना (इनकी अपवित्रता कोई नहीं मानता, यह सभी शरीरों पर प्रयोग में लाये जाते हैं। चन्दन आदि की भान्ति परमात्मा का नाम प्रत्येक को सुगन्धि देता है, अर्थात् सभी को आत्मिक शीतलता और शांति देता है। जैसे रेशम और घी के बर्तन की कोई अपवित्रता नहीं मानी गई, वैसे ही (सिफ्त-

सालाह (स्तुति) की शक्ति से प्रभु-भक्त के मन में सभी अपवित्रताएँ और दूरियां समाप्त हो जाती हैं। गुरू नानक साहिब का फुर्मान है:

केसरि, कुसम, मिरगमै हरणा, सरब सरीरी चढ़णा॥
चंदन भगता जोति इनेही, सरबे परमलु करणा॥२॥
घिअ पट भांडा कहै न कोए॥ ऐसा भगतु वरन महि होए॥

(तिलंग, म: १, ७२१)

पद अर्थ: कुसम-फूल । **मिरगमै**-कस्तूरी। **हरणा** (हिरणय)-सोना। **परमलु**-सुगन्धि।

नाम सिमरन वाला मनुष्य सभी की सज्जन बन जाता है। उसके हृदय में सदैव चाव रहता है, उसके माथे (मस्तक) पर सभी के लिए प्यार होता है। वह कटु बचन बोल कर किसी का दिल दु:खी नहीं करता। उसके ऐसे व्यवहार से सभी लोग उसे अपना जानते हैं:

सजणु मैडा चाईआ, हभ कही दा मितु॥
हभे जाणनि आपणा, कही न ठाहे चितु॥२॥

(मारू की वार, म: ५, १०९६)

बाबा फरीद जी भी यह फुर्माते हैं कि हे मनुष्य! यदि तुम्हें प्रभु को मिलने की इच्छा है तो कुबोल (कटु वचन) बोल कर किसी का दिल मत दु:खी कर क्योंकि सभी के भीतर मालिक प्रभु का निवास है:

इकु फिका न गालाए, सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि, माणिक सभ अमोलवे॥१२९॥
सभना मन माणिक, ठाहणु मूलि मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक, हिआउ न ठाहे कही दा॥१३०॥

(श्लोक, शेख फ़रीद के, १३८४)

पद अर्थ: गालाए-बोल। **घणी**-मालिक, खसम। **हिआउ**-हृदय।

कैही-किसी का भी। **ठाहि**-तोड़ना। **माणिक**-मोती। **ठाहणु**-दुखाना। **मूलि**-बिल्कुल ही। **मचांगवा**-अच्छा नहीं । **तउ**-तुझे।

जब मनुष्य की नाम सिमरन द्वारा ऐसी आत्मिक अवस्था बन जाए, जब उसे प्रत्येक हृदय में प्रभु-साईं दिखाई दे और वे नम्रता धारण करके जगत में रहे, फिर ऊंची जाति का अभिमान और धन का अहंकार मनुष्य के निकट नहीं आते। जाति-वर्ण, ऊंच-नींच, अमीर-गरीब का भेद मिट जाता है। सभी में निवास कर रहा साईं को रीझाने के लिए मनुष्य सभी का सेवक बन जाता है, सभी के लिए प्यार और आदर के भावों से उसका हृदय भरपूर रहता है।

(झ) नाम जपने से मन आनन्दमय और हर्षदायक रहता है:- जहां देखो वहीं तृष्णा और विकारों की आग लगी हुई दिखाई देती है, मोह-माया का जाल फैला हुआ नज़र आता है, धन-प्राप्ति की लालसा, जायदाद बनाने की लालसा और राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य अपना पूरा ध्यान और शक्ति लगा रहे हैं। प्रतिदिन कड़ी मेहनत, उलझनों में पड़े रहते और चिन्ताग्रस्त रहते हैं; दूसरों की तरक्की को देख कर खीझते रहते हैं। मनुष्य का मन रोगी हुआ पड़ा है। उसने कई ऐसे मानसिक दुःख लगा लिए हैं, जिनसे वह सरलता से बच सकता था। उसकी पदार्थवादी सोच ने उसकी चिन्ताएँ, फिक्र और मानसिक भटकन को नित्य बढ़ावा दिया है और सभी सुविधाओं के होते हुए भी वह दुःखी है। उपरोक्त दशा में से निकलने के लिए बहुत ज़रुरी है कि मनुष्य प्रभु का आंचल (पल्ला) पकड़े और सही मार्ग पर चले। सतिगुरू की कृपा से जिस मनुष्य को प्रभु नाम की दात प्राप्त होती है, उसके तन में शीतलता पड़ जाती है, ज्ञान ने इन्द्रियां सताने की जगह सुख देने लग पडती हैं और अडोलता की मीठी निद्रा आनी प्रारम्भ हो जाती है। गुरू साहिब फुर्माते हैं:

जिना बात को बहुतु अंदेसरो, ते मिटे सभि गइआ॥
सहज सैन अरु सुखमन नारी, ऊध कमल बिगसइआ॥१॥

देखहु अचरजु भइआ॥
जिह ठाकुर कउ सुनत
अगाधि बोधि, सो रिदै गुरि दइआ॥ रहाउ॥
जोए दूत मोहि बहुतु संतावत, ते भइआनक भइआ॥
करहि बेनती राखु ठाकुर ते, हम तेरी सरनइआ॥२॥
जह भंडारु गोबिंद का खुलिआ, जिह प्रापति तिह लइआ॥
एकु रतन मो कउ गुरि दीना, मेरा मन तनु सीतलु थिआ॥३॥
एकु बूंद गुरि अंम्रितु दीनो, ता अटलु अमरु न मुआ॥
भगति भंडार गुरि नानक कउ सउपे,
फिरि लेखा मूलि न लइआ॥४॥३॥१४॥ (सोरठि, म: ५, ६१२)

पद अर्थ: अंदेसरो-चिंता-फिक्र। **सहज**-आत्मिक अडोलता। **सैन**-लीनता। **सहज सैन**-आत्मिक अडोलता में लीनता। **सुखमन**-मन को सुख देने वाली। **नारी**-नारियाँ, इन्द्रियां। **ऊध**-उल्टा। **बिगसिआ**-खिला पड़ा है। **अचरजु**-आश्चर्यजनक तमाशा। **अगाधि**- बहुत ही गहरा। **रिदै**-हृदय में। **गुरू**-गुरु ने। **जोइ दूत**-जो दुश्मन। **मोहि**-मुझे। **भइआनक**-भयभीत। **राखु**-बचा ले। **अंमृत**-आत्मिक जीवन देने वाला, जल। **अमरु**-आत्मिक मृत्यु निकट नहीं आती।

अर्थ: हे भाई! मेरे भीतर एक आश्चर्यजनक कौतुक हो गया है। गुरू ने मेरे हृदय में परमात्मा दिखा दिया है, जिसके बारे में सुना था कि मनुष्य समझ से दूर है॥ रहाउ॥

हे भाई! जिन बातों की मुझे बहुत चिंता लगी रहती थी (गुरू की कृपा से) वह सभी चिन्ता-फिक्र मिट गए हैं। मेरा उल्टा हुआ पड़ा हृदय रूपी कंवल का फूल खिल पड़ा है। आत्मिक दृढ़ता में मेरी लीनता हुई रहती है और मेरी सारी इन्द्रियां अब मेरे मन को आत्मिक सुख देने वाली हो गई हैं॥१॥

हे भाई! जो मनुष्य (विकार) मुझे सताते थे, वे अब (मेरे से) भयभीत हो गए हैं। वे तो गिड़गिड़ाते हैं कि हम अब तुम्हारे अधीन

होकर रहेंगे, मुझे मालिक प्रभु के कोप से बचा लो।२॥

हे भाई! मेरे भीतर ऐसा कौतुक हो गया है कि इस अवस्था में परमात्मा की भक्ति का खज़ाना मेरे भीतर प्रकट हो गया है परन्तु यह खज़ाना उस मनुष्य को ही मिलता है, जिसके भाग्य में इसकी प्राप्ति लिखी हुई है। हे भाई, गुरू ने मुझे परमात्मा का नाम रूपी एक ऐसा रत्न दिया है कि उसकी शक्ति (बरकत) से मेरा मन शीतल हो गया है। मेरा शरीर शान्त हो गया है॥ ३॥

हे भाई! गुरू ने आत्मिक जल देने वाले नाम-जल की एक बूंद दी है, अब मेरी आत्मा विकारों से अडोल हो गई है। आत्मिक मृत्यु से मैं बच गया हूँ। आत्मिक मृत्यु मेरे पास नहीं आ सकती। हे भाई! जब से गुरू ने नानक को परमात्मा की भक्ति के खज़ाने बख्श दिये हैं, उसके पश्चात् कर्मों का हिसाब बिल्कुल नहीं मांगा॥४॥

याद और प्यार का आपस में गहरा सम्बध है। जिसको जितना याद किया जाए, उससे उतना ही अधिक प्यार बढ़ता है। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता है, तैसे-तैसे अपने प्रियतम को दोबारा याद करने को दिल करता है। प्रियतम की बातें सुन कर, याद करके मन को शीतलता मिलती है। जितनी देर मन प्रियतम की याद में लगा रहे उतनी देर अन्य कार्य और ख्याल, दुःख क्लेश, चिन्ताएं मन के निकट नहीं आती। उसकी प्यार भरी यादें मन में तरंग पैदा करती हैं, शरीर में जैसे बिजली का करंट दौड़ जाता है और मन खुशी से भर जाता है, विस्माद की दशा हो जाती है और ऐसा आत्मिक आनन्द आता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी तरह प्रभु-प्रियतम की भक्ति भी इस तरह के सारे भाव मनुष्य के मन में प्रकट करती है।

श्री गुरू अर्जुन देव जी प्रभु-प्रियतम को सम्बोधन करते हुए कहते हैं: हे दाता ! तेरी बातें सुनकर मेरा मन खिल जाता है। तेरा नाम याद करने से मेरे चेहरे (मुख) पर लाली चढ़ जाती है, तेरे

रास्ते पर चलते हुए मेरे भीतर शान्ति आती है। जब मेरे पग तेरी ओर चलते है, तब उस समय यह मुझे सुन्दर लगते हैं जब मैं अपना शीश तेरे चरणों पर रखता हूँ, तो मेरा मस्तिक खिल जाता है और तेरी शरण पड़ने से आत्मा सुन्दर हो जाती है:

सोइ सुणंदड़ी मेरा तनु मनु मउला, नामु जपंदड़ी लाली॥
पंधि जुलंदड़ी मेरा अंदरु ठंढा, गुर दरसनु देखि निहाली॥१॥

(रामकली की वार, श्लोक म: ५, ९६४)

पाव सुहावे जांतउ धिरि जुलदे, सीसु, सुहावा चरणी॥
मुखु सुहावा जां तउ जसु गावै, जीउ पइआ तउ सरणी॥२॥

(रामकली की वार, म: ५, ९६४)

गुरू नानक पातिशाह भी जपु जी में फुर्माते हैं कि प्रभु के भगत सदैव खिले मस्तक रहते हैं। जैसे-जैसे वह पातिशाह का नाम सुनते हैं, परमात्मा के गुण याद करते हैं कोई दु:ख, कोई क्लेश, कोई पाप उनके निकट नहीं आता :

नानक, भगता सदा विगासु॥ सुणिऐ, दूख पाप का नासु॥

नाम जपने से जो आत्मिक आनन्द अथवा सुख मनुष्य को प्राप्त होता है, उसका ज़िक्र गुरू अर्जुन पातिशाह ऐसे करते है:

साई अलखु अपारु, भोरी मनि वसै॥
दुखु दरदु रोगु, माइ मैडा हभु नसै॥१॥
हउ वंञा कुरबाणु, साई आपणो॥
होवै अनदु घणा मनि तनि जापणो॥१॥ रहाउ॥
बिंदक गालि् सुणी सचे तिसु धणी॥
सूखी हूं सुखु पाइ, माइ न कीम गणी॥२॥
नैण पसंदो सोइ पेखि मुसताक भई॥
मै निरगुणि, मेरी माइ आपि लाए लई॥३॥
बेद कतेब संसार हभा हूं बाहरा॥

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा॥४॥३॥१०५॥

(आसा, म: ५, १०५)

अर्थः हे माँ! मैं अपने खसम-प्रभु से कुर्बान जाती हूँ। उसका नाम जपने से मेरे मन में, हृदय में आनन्द पैदा हो जाता है॥१॥ रहाउ॥

हे मां! जब मैं सदैव कायम रहने वाले मालिक-प्रभु की थोड़ी सी भी सिफत-सलाह (स्तुति) सुनती हूँ, तो मैं इतना ऊंचा सुख अनुभव करती हूँ कि मैं उस सुख का मूल्य नहीं बता सकती॥२॥

हे मेरी माँ! मेरा वह साईं आँखों को प्यारा लगता है। उसको देख कर मैं मस्त हो जाती हूँ। हे माँ! मेरे मन में कोई गुण नहीं, फिर भी उसने आप ही मुझे अपने पल्लू से लगा रखा है॥३॥

हे माँ! मेरा वह पातिशाह केवल संसार में ही नहीं निवास कर रहा बल्कि वह तो इस दीखते संसार से बाहर भी हर जगह है। वेद-कतेब आदि कोई धर्म पुस्तक उसका स्वरूप ब्यान नहीं कर सकते। (वैसे हे माँ! मेरा, नानक का पातिशाह, प्रत्येक जगह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है॥४॥)

(ञ) नाम जपने से प्रभु से विछोड़ा असहनीय हो जाता है: प्रभु की सिफत-सलाह (स्तुति) का यह गुण है कि जैसे-जैसे प्रभु के गुणों की विचार करें, प्रभु की मीठी याद को मन में बैठाएं तो उस रस भिन्ने प्रभु के विछोड़े का ख्याल भी शरीर को तड़पा देता है:

विछोड़ा सुणे डुखु, विणु डिठे मरिउदि॥
बाझु पिआरे आपणे, बिरही ना धीरोदि॥३॥१८॥

(मारु की वार, म: ५, ११००)

पद अर्थः **सुणे**-सुनकर। **मरिउदि**-आत्मिक मृत्यु हो जाती है। **बिरही**-सच्चा आशिक प्रेमी। **ना धीरोदि**-धैर्य नहीं करता, मन

टिकता नहीं॥३॥

अर्थ-प्रभु चरणों का असली प्रेमी वह है जिसे यह सुनकर ही दुख महसूस हो कि प्रभु से विछोड़ा होने लगा हैं। प्रभु को देखे बिना वह आत्मिक मृत्यु महसूस करता है। अपने प्यारे से बिछुड़ कर प्रेमी का मन टिकता नहीं। ऐसे प्रभु-प्रेमी के मन में ऐसी विनय उठती है:-

डिठी हभ ढंढोलि, हिकसु बाझु न कोए॥
आउ सजण तू मुखि लगु, मेरा तनु मनु ठंढा होए॥१॥१८॥

(मारु की वार, म: ५, ११००)

अर्थ: मैंने सारी सृष्टि ढूंढ कर देख ली है। केवल प्रभु के दीदार के बगैर अन्य कोई पदार्थ आत्मिक शान्ति नहीं देता। हे मेरे प्रभु प्रियतम! मुझे दर्शन दे। तेरा दर्शन करते ही मेरे हृदय में, मेरे मन में शीतलता पड़ जाती है।

प्रियतम से बिछुड़ने के कारण जो मानसिक अवस्था बनती है, गुरू अर्जुन पातिशाह उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं-

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई॥
बिलप करे चात्रिक की निआई॥
त्रिखा न उतरै, सांति न आवै,
बिनु दरसन संत पिआरे जीउ॥१॥
हउ घोली जीउ, घोलि घुमाई
गुर दरसन संत पिआरे जीउ॥१॥ रहाउ॥
तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी॥
चिरु होआ देखे सारिंगपाणी॥
धंन सु देसु जहा तूं वसिआ,
मेरे सजण मीत मुरारे जीउ॥२॥
हउ घोली हउ घोलि घुमाई,
गुर सजण मीत मुरारे जीउ॥१॥ रहाउ॥

इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता॥
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता॥
मोहि रैणि न विहावै, नीद न आवै,
बिनु देखे गुर दरबारे जीउ॥३॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई,
तिसु सचे गुर दरबारे जीउ॥१॥ रहाउ॥
भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ॥
प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ॥
सेव करी पलु चसा न विछुड़ा,
जन नानक दास तुमारे जीउ॥४॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई,
जन नानक दास तुमारे जीउ॥ रहाउ॥१॥८॥

(माझ, म: ५, चउपदे, १६)

नोट : इस शब्द के साथ 'चिट्ठीआँ' वाली एक कथा जुड़ी हुई है, जोकि बिल्कुल मनोकल्पित है। इस विषय में पूर्ण चर्चा अन्य रूप में की जा सकती है, परन्तु चौथे बंद की पंक्ति ''*भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ*'' गुरू द्वारा संत-प्रभु को मिलाने का संकेत (इशारा) देता है। यदि कहानी ठीक होती तो पंचम पातिशाह कहते ''प्रभु ने मुझे गुरू मिला दिया है।''

यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि 'नानक' बनने से बगैर (भाव गुरू बनने से पहले) किसी को भी किसी भी समय यह हक (अधिकार) नहीं था कि वह अपनी किसी रचना में भी 'नानक' शब्द का प्रयोग करे।

अर्थ: गुरू का दर्शन करने के लिए मन बहुत इच्छुक है (जैसे पपीहा स्वाति बूँद के लिए गिड़गिड़ाता है)। पपीहे की तरह (मेरा मन गुरू के दर्शन के लिए) गिड़गिड़ा रहा है। प्यारे संत-गुरू के दर्शन के बगैर मेरी दर्शन-प्यास नहीं मिटती, मेरे मन को धैर्य नहीं आता, मैं प्यारे संत-गुरू के दर्शन से कुर्बान जाता हूँ, सदके जाता

हूँ॥१॥ रहाउ॥

हे धनुषधारी प्रभु जी! तेरा मुंह (दर्शन) सुख देने वाला है शीतलता पाने वाला है। तेरी स्तुति मेरे भीतर आत्मिक दृढ़ता की लहर पैदा करती है। तेरा दर्शन किए तो देर हो गई है। हे मेरे साजन प्रभु! वह हृदय-देश किस्मत वाला है जिसमें तू निवास करता है॥२॥ हे मेरे साजन गुरू! हे मित्र-प्रभु! मैं तुझ पर कुर्बान जाता हूँ, सदके जाता हूँ॥१॥ रहाउ॥१॥

हे मेरे प्यारे प्रभु! जब मैं तुझे एक घड़ी भर भी नहीं मिलता, तो मेरे लिए तो कलियुग हो जाता है (मैं तेरे बिछोड़े में व्याकुल हूँ) बता अब मैं कब मिल सकूँगा। हे भाई! गुरू की शरण के बगैर परमात्मा से मिलाप नहीं हो सकता, इसलिए गुरू के दरबार के दर्शन करने के बगैर मेरी ज़िन्दगी की रात्रि सरलता से नहीं गुज़रती, मेरे भीतर शान्ति नहीं आती। मैं गुरू के इस दरबार से कुर्बान हूँ, बलिहार जाता हूँ, जो सदैव कायम रहने वाला है॥३॥

मेरे भाग्य जाग पड़े हैं, गुरू ने मुझे शान्ति का खज़ाना अर्थात् परमात्मा मिला दिया है। अविनाशी प्रभु को अब मैंने हृदय में ही ढूँढ लिया है। हे दास नानक! (कह-हे प्रभु कृपा कर) मैं तेरे दासों की सेवा करता रहूँ, तेरे दासों से मैं एक पल भर भी न बिछड़ूँ, एक पल (आँख झपकने का समय) भी न बिछड़ूँ॥४॥

हे दास नानक! (कह हे प्रभु) मैं तेरे दासों पर कुर्बान जाता हूँ॥ रहाउ॥

गुरबाणी में अन्य अनेकों ही शब्द हैं, जिसमें बिछुड़ने की दशा का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है। बिछुड़ना जहाँ दु:खदाई है, वहाँ मन में वैरागमई प्यार तरंगें (लहरें) पैदा करता है इसीलिये तो फरीद जी ने फुर्मान किया है:

बिरहा बिरहा आखीए बिरहा तू सुलतान॥

फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै, सो तनु जाणु मसानु॥३६॥

(श्लोक, शेख फरीद के, १३७९)

नाम के बिना मनुष्यों की दशा

पिछले अध्याय में हमने नाम-जपने, नाम सिमरन अथवा प्रभु की स्तुति करने से मन को जो प्राप्ति होती है, उनका कुछ ज़िक्र किया है। नाम सिमरन की सभी बरकतों का बयान नहीं हो सकता, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि सुखी और नियमबद्ध जीवन के लिए नाम-आधार बहुत आवश्यक है।

आज का मनुष्य प्रभु से दूर होता जा रहा है। इसका यह निष्कर्ष निकला कि मनुष्य के मन में पदार्थवादी रुचियाँ पूरी तरह से बैठ गई हैं। उसका यह विश्वास बनता जा रहा है कि 'यह जग मीठा अगला किसने देखा'। मनुष्य ने वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रशंसनीय उन्नति की है और प्रतिदिन सुख के नए साधन आविष्कार हो रहे हैं किन्तु मनुष्य के भीतर, ईर्ष्या, घमंड, जलन के रोग प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। परिवारों में उलझनें बढ़ रही हैं, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, समाजों अथवा कौमों में ईर्ष्या बढ़ रही है। भिन्न-भिन्न वादों को मानने वाले युद्ध के लिए तैयार हैं। मनुष्य जितना सभ्य बनता जा रहा है, उतने ही मनुष्यों को खत्म करने के घातक-हथियार अधिक बना रहा है। ऐटमी बम और सितारा युद्ध के बादल संसार पर छाए हुए हैं। पता नहीं किस समय वर्षा हो जाए। बात क्या, विद्या के फैलाव, वैज्ञानिक तरक्की और मनुष्य के सभ्य होने के साथ मनुष्य में पशु-व्रति प्रधान हो रही है। इस सभी कुछ का कारण प्रभु से दूरी ही है। प्रभु-अकाल पुरख हमारा मूल है। उसके साथ लगे रहने से हमारे भीतर वह विचार-संस्कार-भाव जागते और दृढ़ होते हैं जो मनुष्य के निजी जीवन और सारे संसार में सुख-शान्ति और अमन-चैन का बोलबाला कायम रखते हैं। इसके विपरीत प्रभु से दूरी के कारण इन ऊंचे कद्रों कीमतों से मनुष्य दूर चला जाता है, जिसका निष्कर्ष उसके अपने खुद के जीवन, परिवार, समाज और समूचे विश्व में बेचैनी, अशान्ति, कलह-क्लेश और युद्धों के रूप में निकलता है। उसके मन में सदैव गुणों की जगह पशु वृत्तियाँ डेरा डाल लेती हैं।

इसलिए सतिगुरू सच्चे पातिशाह, साहिब श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी, हमें जीवन की इस असलियत के बारे में समझाते हैं;

लाज मरै जो नामु न लेवै॥ नाम बिहून सुखी किउ सोवै॥
हरि सिमरनु छाडि परमगति चाहै॥ मूल बिना साखा कत आहै॥

(भैरउ, म: ५, ११४८, ४९)

सोधत सोधत सोधि ततु बीचारिआ॥
नाम बिना सुखु नाहि सरपर हारिआ॥४॥ *(सूही, म: ५, ७६२)*

हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ॥
मै आपणा गुरु पूछि देखिआ, अवरु नाही थाउ॥

(सिरीराग, म: १, १४)

जिन हरि हिरदै नामु न बसिउ, तिन मात कीजै हरि बांझा॥
तिन सुंञी देह फिरहि बिनु नावै, उड़ खपि खपि मुए करांझा॥

(जैतसरी, म: ४, ६९७)

मुह काले तिना निंदका तितु सचै दरबारि॥
नानक नाम विहूणिआ ना उरवारि न पारि॥२॥१७॥

(वार सोरठि, म: ३, ६४९)

नाम बिहूना तनु मनु हीना, जल बिनु मछुली जिउ मरै॥

(सिरी राग, म: ५, ८०)

डिठा सभु संसारु सुखु न नाम बिनु॥२॥१६॥

(गउड़ी की वार, म: ५, ३२२)

कोटि बिघन तिसु लागते, जिसनो विसरै नाउ॥
नानक अनदिनु बिलपते जिउ सुंञै घरि काउ॥१॥१५॥

(गूजरी की वार, म: ५, ५२२)

जितु तनि नामु न भावई, तितु तनि हउमै वादु॥
गुर बिनु गिआनु न पाईऐ, बिखिआ दूजा सादु॥

(सिरी राग, म: १, ६१)

बिनु सिमरन जैसे सरप आरजारी॥
तिउ जीवहि साकत नामु बिसारी॥१॥
एक निमख जो सिमरन महि जीआ॥
कोटि दिनस लाख सदा थिरू थीआ॥१॥ रहाउ॥
बिनु सिमरन ध्रिगु करम करास॥
काग बतन बिसटा महि वास॥२॥
बिनु सिमरन भए कूकर काम॥
साकत बेसुआ पूत निनाम॥३॥
बिनु सिमरन जैसे सीङ्ग छतारा॥
बोलहि कूरु साकत मुखु कारा॥४॥
बिनु सिमरन गरधभ की निआई॥
साकत थान भरिसट फिराही॥५॥
बिनु सिमरन कूकर हरकाइआ॥
साकत लोभी बंधु न पाइआ॥६॥
बिनु सिमरन है आतम घाती॥
साकत नीच तिसु कुलु नही जाती॥७॥
जिसु भइआ क्रिपालु तिसु सतसंगि मिलाइआ॥
कहु नानक गुरि जगतु तराइआ॥८॥७॥

(गउड़ी, म: ५, असटपदीआ, २३९)

पद अर्थः सरप अरजारी–बड़ी आयु का सर्प। **साकत**–धन दौलत वाला। **काग बतन**–कौवे का मुँह। **कूकर**–कुत्ता। **काम**–कार्य, कर्म। **कूकर काम**–कुत्तों जैसे काम। **बसुआ–पूत**–वेश्या का लड़का। **निनाम**–नाम के बगैर, जिसके पिता का नाम नहीं पता। **सीङ्ग–छतारा**–सींगों वाला भेड़। **कूरु** – झूठ। **मुख कारा**–मुँह काला। **गरधभ**–गधा। **कूकर हरकाइआ**–हल्का हुआ कुत्ता।

एक भगति भगवान, जिह प्रानी कै नाहि मनि॥
जैसे सुकरू सुआन, नानक, मानो ताहि तनु॥४४॥

(श्लोक, म: ९, १४२८)

(**पद अर्थः सूकर**–सूर। **सुआन**–कुत्ता)

प्रभु को भूल कर, नाम मार्ग त्यागने से (अथवा न अपनाने) से संसारिक वस्तुएं–धन, जायदाद, संतान से मोह बढ़ता है और मनुष्य को भटकना ही पड़ता है :

खाणा पीणा हसणा सउणा, विसरि गइआ है मरणा॥
खसमु विसारि खुआरी कीनी, ध्रिगु जीवणु, नही रहणा॥१॥१॥

(रागु मलार, चउपदे म: १, १२५४)

ध्रिगु खाणा ध्रिगु पैनणा, जिना दूजै भाइ पिआरु॥
बिसटा के कीड़े बिसटा राते,
मरि जंमहि होहि खुआरु॥५॥२॥७॥२॥९॥ *(प्रभाती, म: ३, १३४७)*

(ध्रिगु–हज़ार फिटकार। दूजै भाइ–प्रभु के बदले अन्य वस्तुओं से प्यार। बिसटा–विष्टा, गंदगी।)

मिलु मेरे गोबिंद अपना नामु देहु॥
नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु असनेहु॥१॥ रहाउ॥
नाम बिना जो पहिरै खाए॥
जिउ कुकरु जूठन महि पाए॥१॥
नाम बिना जेता बिउहारु॥
जिउ मिरतक मिथिआ सीगारु॥२॥
नामु बिसारि करे रस भोग॥
सुखु सुपनै नही तन महि रोगा॥३॥
नामु तिआगि करे अन काज॥
बिनसि जाइ झूठे सभि पाज॥४॥

नाम संगि मनि प्रीति न लावै॥

कोटि करम करतो नरकि जावै॥४॥

हरि का नामु जिनि मनि न आराधा॥

चोर की निआई जम पुरि बाधा॥६॥

लाख अडंबर बहुतु बिसथारा॥

नाम बिना झूठे पासारा॥७॥

हरि का नामु सोई जनु लेइ॥

करि किरपा नानक जिसु देइ॥८॥

(गउड़ी, म: ५,२४०)

पद अर्थः कूकरु–कुत्ता। **जूठन**–जूठ, गंदगी। **मिरतक सीगारु**–मृतक के श्रृंगार की तरह। **पाज**–दिखावा। **कोटि करम**–करोड़ों ही धार्मिक कर्म, कर्म–कांड।

मरणं बिसरणं गोबिंदह॥ जीवणं हरि नाम ध्यावुणह॥

(गाथा, म: ५, १३६१)

इसीलिए कहा गया है कि वह मर ही क्यों नहीं जाते जिनको नाम भूल गया है, नाम के बगैर जीवन का कोई अर्थ नहीं:

मरि न जाही जिना बिसरत राम॥

नाम बिहून जीवन कउन काम॥१॥ रहाउ॥

(गउड़ी, म: १८८)

बहुत से लोग कहते हैं कि आचरण ऊँचा होना चाहिए भाव कि वह सत्य बोले, सच्ची कमाई (कार्य) करे, चोरी न करे, धोखा न दे, मीठा बोले, सभी का भला चाहे, नाम जपने की अथवा प्रभु भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे मनुष्य खुद चरित्रहीन होते हैं। उनको यह मालूम नहीं कि आचरण कैसे बनाया जाता है। नाम–सिमरन का एक उद्देश्य ऊंचा आचरण भी बनाना होता है। प्रभु गुणों का खज़ाना है, सभी गुणों का कोष है, ऊँचे मूल्यों का स्त्रोत है।

प्रभु के भक्त नाम रसीए अथवा उसके गुणों के विचार करने वाले खुद ऊँचे-सत्य गुणों के मालिक बन जाते हैं अथवा उनके चरित्र को बनाया जाता है। प्रभु से दूरी घमंड बढ़ाती है, मनुष्य को विकारी बनाती है, सर्व के भले की जगह ख़ुद के भले की भावना को बढ़ाती है। दूसरों का हक मारना, अपने आपको श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा समझने की रुचि पैदा करती हैं। इसलिए नाम-मार्ग के पंथी बनने के बगैर सदाचारी अथवा ऊँचे आचरण वाला बनने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए तो सतिगुरू फुर्मान करते हैं :

नाम बिना कैसे आचार॥१॥१२॥

(प्रभाती, मः १, १३३०)

बिनु सबदै आचारु न किन ही पाइआ॥१६॥

(वार मलार, मः १, १२८५)

आचार बिउहार जाति हरि गुनीआ॥
महा अनंद कीरतन हरि सुनीआ॥३॥२॥१७॥

(टोडी, मः ५, ७१५)

उसतति मन महि करि निरंकार॥ करि मन तेरे सति बिउहार॥

(गउड़ी सुखमनी, मः ५, २८१)

नास्तिक लोग सदाचार पर अधिक बल देते हैं, परन्तु इनका सदाचार अपने भले अथवा ज्यादा से ज्यादा अपने विचारों को मानने वालों तक सीमित होता है। जो इनसे भिन्न विचार रखते हैं, उनको गलत सिद्ध करने के लिए धूँआधार प्रचार किया जाता है। विरोध की आवाज़ का तो गला ही घोंट दिया जाता है और प्रतिद्वन्दी को खत्म करने में ही 'सदाचार' माना जाता है। इसके विपरीत जो गुरुसिख नाम-मार्ग पर चलते हैं, वे सभी का अथवा मनुष्य मात्र का भला चाहते हैं। वह सुबह-शाम सभी के भले के लिए विनय करते हैं। यही भिन्नता है 'केवल सदाचारियों' में और प्रभु के साथ जुड़े सदाचारियों में।

प्रभु का नाम ही मनुष्य को वास्तव में मनुष्य बनाता है और अन्य से मिठास, नम्रता और प्यार से व्यवहार करना सिखलाता है, सच्चा कर्म करने के लिए प्रेरता है, ज़रुरतमंदों की सेवा के लिए मनुष्य तैयार करता है, त्याग और कुर्बानी के जज़्बे से समाज सेवा में लगता है। नाम जपने वाला जहाँ खुद प्रसन्नता में रहता है, वहीं समाज में सुख-शान्ति और खुशियां बाँटता है। उससे स्वच्छ जीवन किसका हो सकता है? इसीलिए गुरबाणी ने हमें यह बात समझाई है कि उस मनुष्य का जीवन सफल है जो प्रभु का नाम जपता है और नाम-हीन मनुष्य का खाया-पिया व्यर्थ है, प्रभु की दृष्टि में उसका कोई आदर नहीं होता और वह अपनी इज्ज़त गंवा कर इस संसार से चला जाता है :

सो जीविआ, जिसु मनि वसिआ सोए॥
नानक, अवरु न जीवै कोए॥
जे जीवै, पति लथी जाए॥ सभु हरामु, जेता किछु खाए॥
राजि रंगु, मालि रंगु, रंगु रता, नचै नंगु॥
नानक ठगिआ मुठा जाए॥ विणु नावै पति गइआ गवाए॥१॥१०॥

(वार माझ, श्लोक म: १, १४२)

पद अर्थ: सो-वह (मनुष्य) **मनि** - मन में। **सोए**-वह(प्रभु)। **अवरु**-अन्य। **जे जीवै**-यदि जीता भी है। **पति**-इज्जत। **राजि रंगु**-राज्य का प्यार। **मालि रंगु**-धन-माल से प्यार। **नंगु**-नंगा, बेशर्म। **मुठा**-लूटा गया।

मनुष्य चाहे कितना भी सुन्दर हो, ऊंची कुल का हो, समझदार हो, चालाक हो, मुख से ज्ञान की बातें करे, धनवान हो, यदि उसका मन प्रभु चरणों में नहीं जुड़ा तो गुरू साहिब की नज़रों में वह मृत-प्राणी के बराबर ही है। उसकी आत्मिक मृत्यु हो चुकी है:

अति सुन्दर, कुलीन, चतुर, मुखि ज्ञानी, धनवंत॥
मिरतक कहीअहि नानका, जिह प्रीति नही भगवंत॥

(गउड़ी, बावन आखरी म: ५, २५३)

संसार में धर्मी कहलाने वाले भी आम तौर पर कुछ धार्मिक रीति-रस्मों की पूर्ति, धार्मिक वेश और चिन्ह धारण करने और कर्म-कांड करने से ही अपने आपको धार्मिक समझने लग पड़ते हैं, लेकिन प्रभु प्रीत अथवा नाम सिमरन से असावधान ही रहते हैं। गुरमति ऐसे मनुष्यों को 'धार्मिक' नहीं समझती बल्कि धर्म से कोसों दूर समझती है। गुरू अर्जुन पातिशाह फुर्माते हैं कि ऐसे प्राणी यदि करोड़ों 'धार्मिक कर्म' भी कर लें तो भी नर्क के अधिकारी ही बनेंगे :

नाम संगि मनि प्रीति न लावै॥
कोटि करम करतो नरकि जावै॥५॥१०॥ (गउडी, म: ५, २४०)

जिनी नामु विसारिआ, बहु करम कमावहि होरि॥
नानक जम पुरि बधे मारीअहि, जिउ संनी उपरि चोर॥

(वार सारंग, श्लोक म: ३, १२४७)

हरि के नाम बिना दुखु, पावै॥
भगति बिना सहसा नह चूकै, गुरु इह भेदु, बतावै॥१॥ रहाउ॥
कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए, राम सरनि नही आवै॥
जोग जग निहफल तिह मानउ, जो प्रभ जसु बिसरावै॥१॥
मान मोह दोनो कउ परहरि, गोबिंद के गुन गावै॥
कहु नानक इह बिधि को प्रानी, जीवन मुकति कहावै॥२॥२॥

(बिलावल, म: ९, ८३०)

चिटे जिन के कपड़े मैले चित कठोर जीउ॥
तिन मुखि नामु न ऊपजै दूजै विआपे चोर जीउ॥

मूलु न बूझहि आपना, से पसूआ से ढोर जीउ॥३॥१॥२॥

(सूही, म: १, असट्पदीआं, ७५१)

जा महि भजनु राम को नाही॥

तिह नरि जनमु अकारथु खोइआ यह राखहु मन माही॥१॥ रहाउ॥

तीरथ करै, ब्रत फुनि राखै, नह मनूआ बसि जा को॥

निहफल धरमु ताहि तुम मानहु सच कहत मैं या कउ॥१॥

जैसे पाहनु जल महि राखिउ भेदै नाहि तिह पानी॥

तैसे ही तुम ताहि पछानहु, भगति हीन जो प्रानी॥२॥

कल महि मुकति, नाम ते पावत, गुर यह भेद बतावै॥

कहु नानक, सोई नरु गरूआ, जो प्रभ के गुन गावै॥३॥३॥

(बिलावल, म: ९, ८३१)

सुखमनी साहिब में गुरू अर्जुन पातिशाह फुर्माते हैं कि छः शास्त्रों और स्मृतियों में जप और तप करने, योग अभ्यास और अन्य कर्म करने, धर्म क्रिया साधना, बाल-बच्चे और स्त्रियों को छोड़कर जंगलों में घूमना, पुण्य-दान करना, हवन यज्ञ करने, शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवाना, हवन में डालना, कई तरह के उपवास रखने आदि सब प्रभु के नाम के विचार के बराबर नहीं है। यदि गुरमुख बनकर एक दफा भी जाप जपें, वह इसके बराबर नहीं हैं:

जाप ताप गिआन सभि धिआन॥ खट सासत्र सिम्रिति वखिआन॥

जोग अभिआस करम धम किरिआ॥ सगल तिआगि बन मधे फिरिआ॥

अनिक प्रकार कीए बहु जतना॥ पुंन दान होमे बहु रतना॥

सरीरु कटाए होमै करि राती॥ वरत नेम करै बहु भाती॥

नही तुलि राम नाम बीचार॥ नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार॥१॥३॥

(गउड़ी, सुखमनी म: ५, २६५)

एक अन्य शब्द में पंचम पातिशाह विस्तार से समझाते हैं कि साध-संगति में जा कर प्रभु के गुण गायन करने, हरि यश करना यही सर्वोत्तम कर्म है और विगत कर्मों (भाग्यों) से ही प्राप्त होता है। इसके बगैर धार्मिक पुस्तकों का केवल मुँह पाठ, चुप्पी धारना, जंगलो में नग्न फिरना, तीर्थ यात्रा, आरे से शरीर कटाना, अन्न, ज़मीन का दान, मूर्ति पूजा, योग मंत्र के चौरासी आसन आदि अनेकों कर्म निष्फल हैं :

पाठु पड़िउ अरु बेदु बीचारिउ, निवलि भुअंगम साधे॥
पंच जना सिउ संगु न छुटकिउ, अधिक अंहबुधि बाधे॥१॥
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई, मै कीए करम अनेका॥
हारि परिउ सुआमी कै दुआरै दीजै, बुधि बिबेका॥ रहाउ॥
मोनि भइओ, करपाती रहिउ, नगन फिरिउ बन माही॥
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिउ, दुबिधा छुटकै नाही॥२॥
मन कामना तीरथ जाए बसिउ, सिरि करवत धराए॥
मन की मैलु न उतरै इह बिधि, जे लख जतन कराए॥३॥
कनिक कामिनी हैवर गैवर, बहु बिधि दानु दातारा॥
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे, नह मिलिऐ हरि दुआरा॥४॥
पूजा अरचा बंदन डंडउत, खुट करमा रतु रहता॥
हउ हउ करत बंधन महि परिआ, नह मिलिऐ इह जुगता॥५॥
योग सिध आसण चउरासीह, ऐ भी करि करि रहिआ॥
वडी आरजा फिरि फिर जनमै, हरि सिउ संगु न गहिआ॥६॥
राज लीला राजन की रचना, करिआ हुकमु अफारा॥
सेज सोहनी चंदनु चोआ, नरक घोर का दुआरा॥७॥
हरि कीरति साध संगति है, सिरि करमन कै करमा॥
कहु नानक तिसु भइउ परापति, जिसु पुरब लिखे का लहना॥८॥

. तेरो सेवकु इह रंगि माता।। भइउ क्रिपालु दीन दुख भंजनु, हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता। रहाउ दूजा।।१।।३।।

(पंना ६४१, ४२)

पद अर्थ: पडिउ–पढ़ा(कई ने)। **अरु**–और। **निवलि**–खड़े हो कर, घुटनों पर हाथ रख कर, श्वास बाहर खींच कर, अंतड़ियों का सिकोड़ना, इससे पेट की अंतड़ियां साफ रहती है, कब्ज़ नहीं रहती। **भुअंगम**–भुअंगम, पीठ की कंगरोड के साथ साथ कुंडलनी नाड़ी जिसकी शक्ल सर्पणी जैसी, इसके द्वारा श्वास चढ़ाते हैं। **साथे**–साधन कीये (कईयों ने) **सिउ**–साथ। **संगु**–साथ। **छुटकिउ**–छूट गया। **अधिक**–बहुत। **अंहबुधि**–अहंकार भरी बुद्धि से। **मैं**–मेरे देखते! **हारि**–हारकर, इनका आसरा छोड़कर। **परिउ**–पड़ा हूँ। **कै दुआरै**–के दर पर। बिबेका–परख। **मोनि भइओ**–कोई चुप साध कर बैठा है। **करपाती**–(कर, हाथ, पात्र–बर्तन) हाथों को ही बर्तन बना रखने वाला। **माही**–में। **तट**–दरिया का किनारा।

सभ–सारी। **भ्रमिउ**– भटकना। दुबिधा–डोलती हुई मानसिक दशा। **छुटकै नाही**–समाप्त नहीं होती।।२।। **कामना**–इच्छा। **सिरि**–सिर पर। **करवत**–आरा, शिवजी वाला आरा, जो बनारस के शिव मंदिर में है, जिससे शरीर चिराने से ब्राह्मणी विश्वास अनुसार शिव लोक मिलना कहा जाता है। **इह बिधि**–इस ढंग से।।३।। **कनिक**–सोना। **कामिनी**–स्त्री। **हैवर**–बढ़िया घोड़े। **गैवर**–बढ़िया हाथी। **दातारा**–देने वाला। **अरपे**–दान करता है। **हरि दुआरा**–हरि के दर पर ।।४।। **अरचा**–मूर्ति की पूजा। **बंदन**–नमस्कार। **डंडउत**–डंडे की भांति सीधे लम्बे पड़कर नमस्कार करनी। **खटु**–छः। **खटु करमा**–ब्राह्मण के लिए छः ज़रुरी धार्मिक कर्म–विद्या पढ़ाई और पड़नी, यज्ञ करना और करना, दान देना और लेना। **रतु रहता**–मगन रहता है। **हउ हउ**–मैं मैं। **इह जुगता**–इस ढंग से।

सिध-योग आसनों में पहुँचे हुए योगी। **रहिआ**-थक गया। **आरजा**-आयु। **संगु**-साथ। **गहिआ**-पाया॥६॥

लीला-रंग-तमाशे। **रचना**-ठाठ-बाठ। **अफारा**-जिसे कोई रोक न सके। **चोआ**-अतर। **घोर**-भयानक॥७॥

कीरति-स्तुति। **करमन कै सिरि**-सभी धार्मिक कामों के सिर पर, सबसे श्रेष्ठ। **पुरब लिखे का**-पहले जन्म में किए कर्मों के लिखे अनुसार॥८॥ **रंगि**-रंग में। **माता**-मस्त। **कीरतनि**-कीर्तन में। **राता**-रंगा हुआ। (रहाउ दूजा)

अर्थ : हे भाई! मनुष्य वेद अर्थ धर्म पुस्तकें पढ़ता है और विचारता है। कोई मनुष्य निवली करम करता है, कोई कुंडलनी नाड़ी के रास्ते प्राण चढ़ाता है परन्तु इन साधनों से कामादिक पाँच विकारों से टूट नहीं सकता, बल्कि अधिक अहंकार में मनुष्य बंध जाते हैं॥१॥ हे भाई! मेरे देखते देखते ही लोग अनेक ही नियत किए गए धार्मिक कर्म करते हैं, परन्तु इन ढंगों से परमात्मा के चरणों से नहीं जुड़ा जा सकता। हे भाई! मैं तो इन कर्म-कांडों का आसरा छोड़कर एक-मालिक प्रभु के दर पर आ पड़ा हूँ और विनय करता हूँ कि हे प्रभु! मुझे भले-बुरे की जांच करने वाली बुद्धि दे।१। (रहाउ)।

हे भाई! कोई मनुष्य चुप्पी साधना में है तो कोई बर्तनों के स्थान पर अपने हाथों का प्रयोग करता है, कोई जंगल में नग्न फिरता है। कोई मनुष्य सारे तीर्थों का भ्रमण करता है, कोई सारी पृथ्वी का भ्रमण कर रहा है। परन्तु इस तरह भी मन की चंचल स्थिति खत्म नहीं होती है।२।

हे भाई! कोई मनुष्य अपनी मनोकामना अनुसार तीर्थों पर जा कर स्नान रहा है, कोई मुक्ति इच्छुक अपने सर पर शिवजी वाला आरा रखता है और अपने आपको चिरवा लेता है। परन्तु यदि कोई

मनुष्य ऐसे लाखों ही प्रयत्न करे, इस तरह भी मन के विकारों की मैल नहीं दूर होती।३।

हे भाई! कोई मनुष्य सोना, स्त्री, बढ़िया घोड़े, हाथी और ऐसे कई प्रकार के दान करने वाला है। कोई मनुष्य अन्न (अनाज) दान करता है, वस्त्र दान करता है, भूमि दान करता है, इन ढंगों से भी से परमात्मा के दर पर पहुँच नहीं सकता ।।४।।

हे भाई! कोई मनुष्य देव पूजा में, देवताओं को दंडवत नमस्कार करने में, छः कर्मों को करने में मस्त रहता है। पर वह भी इन निश्चित हुए धार्मिक कर्मों के कारण अपने आपको धर्मी जान कर, अहंकार में मैं-मैं करता माया और मृत्यु के बंधनों में जकड़ा रहता है। इस तरीके से भी परमात्मा को मिल नहीं सकता।५।

योग मत्त में सिद्धों के प्रसिद्ध चौरासी आसन हैं। यह आसन करके भी मनुष्य थक जाता है। आयु तो लम्बी कर लेता है, पर इस ढंग से परमात्मा से मिलाप नहीं बनता, फिर-फिर जन्मों के चक्कर में पड़ा रहता है।६।

हे भाई! कई ऐसे हैं जो राज्य-हकूमत के रंग-तमाशों में विलीन हैं, राजाओं वाले ठाठ-बाठ बनाते हैं, लोगों पर हकूमत चलाते हैं, कोई उनका हुक्म टाल नहीं सकता। सुन्दर स्त्री की सेज (शैय्या) का आनन्द उठाते हैं, अपने शरीर पर चंदन और इत्र प्रयोग करते हैं परन्तु यह सभी कुछ नर्क की ओर ले जाने वाला है।७।

हे भाई! साध संगत में बैठ कर परमात्मा की स्तुति करना यह काम अन्य सभी कर्मों से श्रेष्ठ है। पर नानक! बता, यह अवसर उस मनुष्य को ही मिलता है, जिसके मस्तिष्क पर पूर्व में किये कर्मों के संस्कारों के अनुसार लेख लिखा होता है।८।

हे प्रभु! तेरा सेवक तेरी सिफत सालाह (स्तुति) के रंग में मस्त रहता है। हे भाई! दीनों के दुःख दूर करने वाला परमात्मा जिस

मनुष्य पर दयावान होता है, उसका यह मन परमात्मा की सिफ्त सालाह (स्तुति) में रंग जाता है। (रहाउ दूजा)

नाम का अर्थ और भाव

गुरबाणी में जितना नाम सिमरन पर बल दिया गया है और 'नाम' की महिमा गायन की गई है उतना ही इस पद (नाम) को बहुत गुणी-ज्ञानी विद्वानों और संत महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न अर्थ करके अस्पष्ट कर दिया है। 'नाम क्या है' इस विषय में कोई ठीक निर्णय तभी ही हो सकता है, यदि हम इस बारे में गुरबाणी का सहारा और गुरमुख विद्वानों की खोज से सहायता लें, जिन्होंने गुरबाणी पर विश्वास रखा है, गुरबाणी का सहारा लिया है और जिन्होंने अपनी बुद्धि अथवा भिन्न-भिन्न कोषों, अन्य मतों की विचारधारा आदि के आधार पर ही इस शब्द की व्याख्या नहीं की है।

भाई साहिब भाई जोध सिंघ जी गुरमति निर्णय के पन्ना १७६ पर 'नाम' के अर्थ बारे में लिखते हैं, "किसी पुरुष, स्थान अथवा वस्तु को जिस संज्ञा से हम पुकारते हैं, उसको नाम कहते हैं। प्रत्येक नाम किसी पदार्थ का गुण दर्शाता है। यदि किसी श्रोते ने कोई वस्तु न देखी हो तो उस वस्तु का कल्पित नाम बताने से उस वस्तु का ज्ञान नहीं होता है। फिर हम उस वस्तु के गुण वर्णन करते हैं। सतिगुरुओं ने अपनी बाणी से निरंकार की हस्ती को प्रकट करने वाले नाम, जिनमें से बहुत पहले भी प्रयोग किए जाते थे, इस्तेमाल किए हैं। साथ ही निरंकार के गुण भी वर्णन किए हैं कि केवल काल्पनिक नाम से कोई भ्रम किसी के मन में रह गया हो वह दूर हो जाए।"

कुछ इसी तरह के विचार भाई साहिब डाक्टर वीर सिंघ जी ने प्रकट किए हैं। आप लिखते हैं :

"नाम" – इसका संस्कृत रूप है नामन्। धातु है "मा" – याद रखना, याद करना। "नामन्" का प्राकृत और पंजाबी रूप है 'नाम'। इसका फारसी रूप भी नाम ही है और अंग्रेज़ी रूप नेम *(Name)* है। इसका अर्थ है जिस पद करके किसी और को विशेषता देकर पुकारा जाए अथवा अपने आपको उससे सम्बन्धित करने हेतु उसका सम्बोधन किया जाए, वह नाम है। किसी वस्तु का वाचक पद् जो अर्थ को प्रकटाए :

माइआ नामु गरभ जोनि का, तिह तजि दरसनु पावउ॥

(पन्ना ६६३, धनासरी, नामदेव)

गुरुबाणी में 'नाम' को नाउ, नाव रूपों में लिखा है, जैसे:

नाउ तेरा निरंकारु है॥ *(वार आसा, म: १, पन्ना ४६५)*

नावै अंदरि हउ वसा॥ *(सिरी रागु, म: १, पन्ना ५५)*

साचा साहिबु साचु नाइ॥ *(जपु जी, पन्ना २)*

आप जी एक अन्य जगह फुर्माते हैं :-

"नाम-जिसका अभ्यास किया जाये, परमेश्वर का नाम। परमेश्वर के नाम से तात्पर्य उसके नाम का, उसके गुणों का ध्यान करके अभ्यास करने से है, जिससे अंत:करण की शुद्धि होती है और नाम की प्राप्ति होती है। जिह्वा के उच्चारण से नामी में अभेदता के सारे (कुल) अभ्यास को नाम कहते हैं।

नाम के अर्थों को विस्तार पूर्वक समझाते हुए भाई साहब लिखते हैं:

"प्रत्येक वस्तु, हर जीवित में गुण, स्वभाव होते हैं, यह आपस में कुछ न कुछ भिन्नता रखते हैं, इसी भिन्नता के कारण एक दूसरे की पहचान होती है और जब किसी को पहचानते हैं तो किसी न किसी तरह के गुण अथवा स्वभाव और दोनों को होने से पहचान

करते हैं। यह पहचान यदि एक आदमी से दूसरे आदमी तक पहुँचानी हो तो इसी तरह पहुँचाई जा सकती है, परन्तु इस तरह पहचान का एक दूसरे को पहुँचाना बड़ा लम्बा काम हो जाता है। उसको सरल करने के लिए प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जानदार, प्रत्येक स्थान और अन्य वस्तु के लिए, जिसका ज्ञान मनुष्य को किसी न किसी तरह होता है, का संकेत दिया जाता है जिससे परस्पर पहचान अथवा ज्ञान के बताने समझाने में मनुष्य को बहुत सुख मिलता है, तो नाम एक तरह से ज्ञान प्रचार है। कोष में नाम 'मा' का अर्थ 'बताना' लिखा है, जिसका अर्थ है वह याद कराए। जब किसी की स्मृति में कोई बात आती है तो उसने अन्य को बतानी होती है तो वह उसका सांकेतिक नाम लेता है। सुनने वाला तुरन्त समझ जाता है क्योंकि नाम सुनते ही उस बात का कुछ ज्ञान उस को होता है, वह बात उसकी स्मृति में आ जाती है।

इसी तरह अकाल पुरुष के विषय में भी मनुष्य ने किया है, अकाल पुरुष मन से अविषय है, पर यह याद करने के लिए मन बाणी से अविषय, रुपरेखा से न्यारा जो सर्वोपरि करतार है, उसको याद करना है, उसको याद करने के लिए उस अगम और अगोचर को स्मृति में लाने के लिए भी उसका ज्ञान और ज्ञान का परस्पर लेन-देन नाम बिना नहीं हो सकता। इसीलिये मनुष्य ने अपने ज्ञान के लिए उसके नाम भी संकेत किए हैं। यह नाम दो प्रकार के हैं: गुण स्वभाव जो संसार में घटते हैं, वह सभी काल, देश के साथ जकड़े पड़े हैं, पर परमेश्वर तीनों से परे है, इसलिये जो मनुष्य ख्याल कर सकता है कि सदा अटल, सदा सच, गुण स्वभाव जो नि-विकारों वाले हों, वह ईश्वर में जान कर उनको ही नाम बनाता है। जिस तरह असती भांति प्रेय या सति चित आनन्द। परमेश्वर त्रिकाल अबोध रूप है, इसलिये उसका नाम 'सति' अथवा असती है। वह सदा चेतन है, इसलिये 'चित' अथवा 'भांति' है, सदा चेतन, सदा सति, सदा ही आनन्द प्रेम स्वरूप है इसलिये 'आनन्द' का प्रेय

है। यह स्वरूप प्रकट नाम है जो देखने योग्य (लखायक) है, बाकी नाम कई एक आवश्यकताओं, कई उसकी कृपालता, गुणों आदि से संकेत हुए हैं।

गुरू जी ने सारे नाम गिन कर 'कृतम नाम' उनको कहा है और सतिनाम को 'सतिनाम तेरा परा पूर्बला' कहा है।

निष्कर्ष यह है कि नाम जिस तरह सांसारिक पदार्थों में याद कराता है, इसी तरह अंगम व अगोचर वाहिगुरू के सिमरन का भी ढंग है। नाम और सिमरन परमार्थ में एक ही अर्थ रखते हैं। नाम जपना, स्मरण करना है। स्मरण उस वस्तु का अधिक रहता है जो प्यारी हो और जिससे प्यार की आवश्यकता हो। तब यदि उसका अधिक स्मरण करें तो ध्यान उसमें लगने लग जाता है। जिसका स्मरण और ध्यान सदा रहे इस ओर खींच पड़ती है। सदैव भावना जिसमें लगी रहे उसे हित अथवा प्यार अथवा प्रेम लग गया और यह सरल ज्ञान हो कि जिससे मन लगाएँ वह प्राप्त होता है। ऐसे नाम नामी की प्राप्ति होती है।

''साईं सूर्य है, साईं का नाम उस सूर्य की धूप, उसी का प्रकाश है उस नूरो नूर के रास्ते का। वह एक है उसका नाम एक है। वह हमसे दूर है, पर विश्वास भी है, जैसे सूर्य दूर है, पर धूप निकट है। वह सूर्य है, नाम धूप है। *(गुरु नानक चमत्कार, गोष्ठी)*

नाम केवल संज्ञा मात्र ही नहीं, यह पद प्रभु के आस्तित्व के लिए भी प्रयोग किया गया है। इस बारे जोध सिंघ जी लिखते है:

पर नाम पद गुरबाणी में केवल संज्ञा के अर्थ में नहीं आया। नीचे लिखे गुर वाक्यों की विचार हमें नाम का एक और अर्थ भी दर्शाती है:

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥

नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान॥ नाम के धारे सुनन गिआन धिआन॥

नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन॥ नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन॥
करि किरपा जिसु आपुनै नामि लाए॥
नानक, चउथे पद महि सो जनु गति पाए॥५॥१॥१६॥

(गउड़ी, सुखमनी, म: ५, २८४)

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई॥
नामु निरंजन नालि है किउ पाईऐ भाई॥
नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठांई॥
गुर पूरे ते पाईऐ हिरदै देइ दिखाई॥
नानक नदरी करमु होए गुर मिलीऐ भाई॥१३॥

(वार सारंग, म: ४, १२४२)

जेता कीता तेता नाउ॥ विणु नावै नाही को थाउ॥

(जपु, म: १, ४)

नाम से भाव एक सर्वव्यापक शक्ति है जो प्रत्येक जगह भरपूर होकर घट-घट को शीतल कर रही है। *(गुरुमति निर्णय, पन्ना १७६, ७७)* इसी तरह के विचार डॉ. करतार सिंघ जी सोलन ने प्रकट किए हैं। आप लिखते हैं :

"गुरुमति में नाम का अर्थ केवल संज्ञा नहीं है। यह गुरुमति उस सृजनहार, पालनहार, सर्वव्यापक, सदा स्थिर, डर रहित, बैर रहित, अमर-आस्तित्व, जून रहित, प्रकाश अस्तित्व के लिए प्रयोग किया गया है।" *(गुरमति के मौलिक सिद्धान्त, पन्ना १२)*

भाई काहन सिंघ जी नाभा ने 'महान कोष' में नाम के अर्थ प्रभु और उसका हुक्म से लिये हैं :

गुरबाणी में 'नाम' करतार और उसके हुक्म का बोधिक शब्द भी है। यथा :

नाम के धारे सगले जंत, नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥

(गउड़ी, सुखमनी, म: ५, पन्ना २८४)

उपरोक्त विचारों को व्याख्या सहित दृढ़ करते हुए भाई साहब डॉ. वीर सिंघ जी लिखते है :

अकाल पुरुष आप सत्य हैं। मनुष्य शरीर में जो शुद्ध चेतन है, उस की अंश (भाग) है : ***कहु कबीर इहु राम की अंसु॥***

(गौंड, कबीर जी, पन्ना ८७१)

जैसे वह अंशी परमात्मा आप अमर अर्थात् अमिट है, तैसे यह अंश अमिट अर्थात् अमर है। सत्य अंशी का अंश सत्य है। नाम गुरबाणी अनुसार दोनों को मिलाने वाला है। दोनों के बीच मिलाप कराने वाला सत्य है। दो सत्य वस्तुओं को मिलाने वाली वस्तु सत्य के बगैर और क्या हो सकती है? गुरबाणी अनुसार वाहिगुरू जी कहते हैं कि मैं नाम के बीच आप निवास करता हूँ:

नावै अंदरि हउ वसा, नाउ वसै मनि आए॥५॥४॥

(सिरी रागु, म: १, असटपदी ५५)

फिर गुरू जी ने फुर्माया है:

हरि सिमरन महि आपि, निरंकारा॥८॥१॥ *(पन्ना २६३, सुखमनी)*

जिस तरह गुरबाणी ने निरंकार को निरंजन, अगंम, अगोचर और अलख आदि विशेषणों से याद किया है, इसी तरह नाम को भी किया है, जैसे :

नामु निरंजनु अगमु अगोचरु, सतिगुरि दीआ बुझाए॥४॥४॥

(वडहंस, म: ३, छंत ५८५)

फिर फुर्माया है:

नामु निरंजन अलखु है ... ... हिरदै देइ दिखाई॥१३॥

(वार सारंग, म: ४, पन्ना १२४२)

पहली पंक्ति में कहा है कि नाम निरंजन है, अगम है, अगोचर है। इन पंक्तियों में बताया है कि निरंजन का नाम, परमात्मा देव की तरह अलख है फिर वह सभी जगह परमात्मा की तरह व्यापक है, एक-देशी नहीं। फिर वह सर्वव्यापक होने के कारण सभी के हृदय में है, जो पूरा गुरू ज्ञिआसु के हृदय में वश रहा दिखा देता है। फिर फुर्माते हैं :

इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा॥

नामु निरंजनु अति अगम अपारा॥२॥५॥६॥

(माझ, म: ३, असटपदीआं ११२)

इन प्रमाणों के विचार से सिद्ध होता है कि नाम वाहिगुरू जी से अभेद उसकी कोई अपनी कला, व्यापक वस्तु है। उसकी तरह माया-रहित है और उसी भांति अलख है।

(गुरमति नाम, पन्ना २४-२५)

जो विचार हम अब तक कर चुके है, उससे स्पष्ट होता है कि नाम से भाव है प्रभु का नाम, अथवा प्रभु की पहचान जो उसके गुणों से होती है। (इन गुणों का विस्तार गुरबाणी में किया गया है) प्रभु का अस्तित्व, अथवा एक सर्वव्यापक शक्ति, जो दिखाई देते और न देते ब्रह्मांड की कार्यविधि चला रही है। अब हम 'नाम-सिमरन' अथवा 'नाम-जपने' के अर्थ पर विचार करेंगे।

नाम सिमरन अथवा नाम-जपने का भाव

'नाम-सिमरन' की व्याख्या करते हुए डॉ. भाई वीर सिंघ जी लिखते है:

"सब से बड़ा कर्म है 'नाम', प्यार से, प्यार भरी याद से, हर समय अपने पिता परमेश्वर से जुड़े रहना। जिस तरह बच्चा माँ की गोद में पड़ा होता है, इसी तरह परम-गोद में पड़े रहना, जगत के काम करने, पर गोद से निकल कर नहीं, गोद के आसरे रह कर

करने, यही नाम है। मन का एक झुकाव पारब्रह्म की ओर पड़ा रहे और एक कार्य की ओर।''

(पुस्तक बाबा नोध सिंघ, १४६, १४७)

''नाम से होता है नामी की ओर रूझान। हाँ, नाम प्यार पाता है उससे जिसका नाम जपते हैं। नाम प्यारे का नाम है, नाम-जप से प्यारा याद में बस जाता है। याद में रखने को सिमरन कहते हैं। सिमरन अर्थात् याद प्यारे का प्रेम है। प्रेम मिलाने वाला है– जीव को ईश्वर से, प्रेमी को प्यारे से, आनंद स्वरूप वाहिगुरू से।'' (गुरू नानक चमत्कार, भाई भगीरथ)

अर्न्तमन को चरण शरण रखें, शरण संम्भाले, शरण से दूर न जाए। शरण का अभ्यास नाम है, निरन्तर नाम में बसो।

(गुरू नानक चमत्कार नूर शाह निसतारा)

''नाम विद्या है, नाम परमेश्वर का नाम है, नाम परमेश्वर के गुणों का सरोवर है, नाम उसका स्वरूप है। (***नाउ पूजीऐ नाउ मंनीए अखंडु सदा सचु सोइ॥***) अपने आपको साईं से लगाई रखना नाम सिमरन है, साथ लगे रहना रंग और रस में जीना नाम है। (***नानक नामु न छोडै, सा धन नामि सहजि समाणीआ॥***) नाम जो कुछ कहा है, इससे अधिक और है। नाम एक तैयारी और प्रयत्न है जो शुभ कर्मों से ऊपर का साधन व दर्जा है। अपने आपको साईं के प्रभाव में लाना नाम (जपना) है। जैसे सर्दी लगते शरीर को सूर्य के समक्ष करना सर्दी को दूर करना है, तैसे अवगुण भरपूर मन को साईं के समक्ष चरणों पर रखना मन के अवगुणों को दूर करना है। और यह मन साईं के प्रभाव से उसके समक्ष रखना, यह झुकाव, यह याद, यह प्रयत्न सभी नाम (सिमरन) है।

सिमरन से हमारा मन साईं के अस्तिव के संस्कार, भीतरी संस्कारों वाले मन में ले जाएगा, इस तरह भीतरी मन 'साईं का अस्तित्व' के भाव से भर जाएगा। उसका स्वरूप 'सत्य' है, इस

तरह उसका सत्य-स्वरुप भीतर बस जाएगा। वह साईं सर्व गुणों का स्रोत है, उसका स्पर्श सारे अवगुणों को दूर करता है। जैसे सूर्य का प्रकाश अधंकार को भगाता है, वैसे ही उसके भीतर बस जाने से सभी अवगुण दूर हो कर गुण से भर जाएंगे, फिर अपना अस्तित्व अपने ही आप, शुद्ध हो जाएगा और अपने करतार से मिल जाएगा। (गुरू नानक चमत्कार भाई झंडा जी) सिमरन के अर्थ और सिमरन की आवश्यकता के बारे में प्रो. डॉ. साहिब सिंघ जी ने बहुत अच्छे ढंग से प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं -

''गुरू नानक देव जी कहते हैं कि यह सारा दृष्ट, अदृष्ट, जगत परमात्मा के स्वयं का प्रकाश है, और इसमें वह खुद बैठ कर कई तरह के कौतुक कर रहा है :

आपीनै् आपु साजिउ, आपीनै् रचिउ नाउ॥

दुयी कुदरति साजीअै, करि आसणु डिठो चाउ॥१॥

(पन्ना ४६३)

इस तरह जगत के सारे जीव-जन्तु परमात्मा के अंश हैं, जीवों का असल (मूल) वह ही है जो परमात्मा का है। गुरू अमरदास जी कहते हैं-

मन, तूं जोति सरूप है, आपणा मूलु पछाणु॥

(पन्ना ५५१, आसा, म: ३)

परन्तु परमात्मा और जीवात्मा दोनों का मूल एक होते हुए भी बेअंत फर्क है। समुद्र जल का एक अथाह इकट्ठ है; इस समुद्र के मुकाबले पानी की एक बूँद की कोई कीमत नहीं गिनी जा सकती। समुद्र बेअंत बड़ा है। छोटी सी बूंद इस समुद्र के समक्ष कुछ भी नहीं। पर जैसे समुद्र के बेअंत जल का मूल हाईड्रोजन और अक्सीजन है, वैसे ही एक बूंद का मूल भी हाईड्रोजन और अक्सीजन ही है।

दरिया का बहता पानी स्वच्छ और साफ़ होता है पर जब बाढ़ आदि के कारण कुछ पानी बाहर आकर किसी तालाब, गड्ढे में पड़ जाता है तो उसका सम्बन्ध दरिया से टूट जाता है। कुछ समय उपरान्त तालाब के ठहरे हुए उस पानी में मच्छर आदि और अन्य कई प्रकार के कीट पैदा हो जाते हैं। उस पानी में से दुर्गन्ध भी आने लगती है। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से पानी का यह रोग कुछ समय के लिए दूर होता है, रोग जड़ से नहीं जाता है।

तालाब के पानी का वास्तिवक रोग है दरिया से बिछोड़ा। इस बिछड़े हुए पानी को दोबारा दरिया में मिला दें तो इसकी दुर्गन्ध और इसके सभी कीट नाश हो जाते हैं। यही बात है जीवात्मा की।

सतिगुरू नानक देव जी एक दृष्टान्त देकर जीवात्मा की एक दया-भरी स्थिति का ज़िक्र करते हैं। एक सरोवर में सुन्दर कमल के फूल पैदा हुए हैं। उनके हरे विशाल पत्ते पानी की छाती पर तैरते हैं और सुनहरे फूल वायु के धीमे झोंके से हुलारे लेते हैं परन्तु यह आनन्द उतनी देर के लिए है जब तक किसी सरोवर अथवा किसी स्रोत (नदी) आदि से पानी मिल रहा है। पानी से बिछुड़ते ही सरोवर का अपना पानी काला हो जाता है, और वे कमल के फूल भी जल कर राख हो जाते हैं। हरियावल से इस जली हुई हालत में पहुँचे हुऐ पदमाकर (सरोवर) से उसकी दुर्गन्ध का कारण पूछते हैं, और वह उत्तर देता है कि जिस पानी की बरकत (स्रोत) से मेरा शरीर महका हुआ था, मेरे अंदर हरियाली थी और कमल के फूल नाच कर रहे थे, उस से मैं बिछुड़ गया हूँ, बस अपनी दुर्गन्ध का कारण मुझे यह बिछोड़ा ही लगता है:

पबर तूं हरीआवला, कवला कंचन वंनि॥

कै दोखड़ै सड़िउहि काली होईआ देहुरी, नानक मै तनि भंगु॥

जाणा, पाणी ना लहां, जै सेती मेरा संगु॥

जितु डिठै तनु परफुड़ै, चड़ै चवगणि वंनु॥३०॥

(सलोक, वारां ते वधीक, म: १, पन्ना १४१२)

कई अनजाने मनमौजी युवक शीघ्रता में कह दिया करते हैं कि यदि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की खुशामद करता है तो लोग उसे अच्छा नहीं समझते, परमात्मा की बढ़ाई करना भी परमात्मा की खुशामद है। फिर यह कैसे अच्छी बात कही जा सकती है?

हम ऊपर देख चुके हैं कि परमात्मा और जीवात्मा का मूल एक ही है। जीव ने किसी 'अन्य' की 'खुशामद' (चापलूसी) नहीं करनी। अपनी छोटी सी 'सुरति' को इसने सर्वव्यापक 'सुरति' में जोड़ना है, अपने छोटे से मन को इसने सर्वव्यापक मन में मिलाना है, अपनी छोटी-सी आत्मा को इसने सर्वव्यापक में डूबोना है। इसी का नाम 'सिमरन' है। सिमरन का अर्थ है याद करना, याद रखना। उस सर्वव्यापक ज्योति को प्रत्येक स्थान पर व्याप्त जान कर उसको "तू है" कहते रहना उसका 'सिमरन' है। शब्द के द्वारा उसकी स्तुति पढ़ना, गाना भी उसका सिमरन (स्मरण) है।

परमात्मा के गुण गायन करना उसकी खुशामद नहीं है। वह बेअंत गुणों का मालिक है, मनुष्य उसके सारे गुण बता भी नहीं सकता। ऐसी कोशिश तो वह है जैसे कोई मानव किसी सुलतान को मियां जी कह कर खुश करना चाहे। जीव ने परमात्मा के गुण सिर्फ इसलिए गाने है कि गुण गाता हुआ यह गुणों के मालिक में लीन हो जाए। किसी गाँव में कोई बेगाना कुत्ता आ जाए, तो उस गाँव के सभी कुत्ते मिलकर उसे भौंकते है और काटने को पड़ते हैं। वह बेचारा सहमा हुआ संकुचित सा होकर थोड़े दाँत निकाल कर अपने बचाव के लिए धीरे-धीरे भौंकता है। यह जगत जीव के लिए एक बेगाना देश है, यहाँ पहुँचने पर उसे यहाँ के अनेक विकार रूपी कुत्ते काटने को पड़ रहे हैं। बस इनसे अपने आपको बचाने के लिए इसको ऐसे कहते रहना है :

तू सुलतानु, कहा हउ मीआ, तेरी कवन वडाई॥
जो तू देहि सु कहा सुआमी, मै मूरख कहणु न जाई॥१॥

तेरे गुण गावा, देहि बुझाई॥
जैसे सच महि रहउ रजाई॥१॥ रहाउ॥
जो किछु होआ सभु किछु तुझ ते, तेरी सभ असनाई॥
तेरा अंतु ना जाणा मेरे साहिब, मै अंधुले किआ चतुराई॥२॥
किआ हउ कथी, कथे कथि देखा, मै अकथु न कथना जाई॥
जो तुधु भावै सोई आखा, तिलु तेरी वडिआई॥३॥
ऐते कूकर, हउ बेगाना, भउका इसु तन ताई॥
भगति हीणु नानकु जे होइगा, ता खसमै नाउ न जाई॥४॥१॥

(बिलावलु, महला १, ७९५)

अर्थः हे रज़ा(इच्छा) के मालिक प्रभु! तू सदा कायम रहने वाला है मुझे ऐसी सूझ बख्शिश कर कि मैं तेरी स्तुति कर सकूं और सिफत सालाह की बरकत से मैं तेरे (चरणों) में टिका रह सकूं।१। रहाउ।

हे प्रभु! तेरी स्तुति करके मैं तेरी बढ़ाई नहीं कर रहा, (यह तो ऐसे है) कि तू बादशाह है और मैं तुझे मियां कह रहा हूँ। (पर केवल इतनी स्तुति मात्र करना भी मेरी सामर्थ्य नहीं है।) हे प्रभु! (सिफत-सालाह करने का) जितना बल तू देता है, मैं उतने तेरे गुण कह लेता हूँ। मुझ अनजान से तेरे गुण ब्यान नहीं हो सकते।१।

यह जितना जगत बना है यह सब तुमसे ही बना है, यह सारी तेरी ही बजुर्गी है। हे मालिक-प्रभु! मैं तेरे गुणों का अन्त नहीं जान सकता। मैं अन्धा हूँ। (कम अक्ल हूँ)। मुझ में कोई ऐसी समझ नहीं है कि मैं तेरे गुणों का अंत जान सकूं।२।

मैं तेरे गुण बिल्कुल नहीं कह सकता। तेरे गुण कहकह कर जब मैं देखता हूँ (तो मुझे समझ पड़ती है कि) तेरा स्वरूप वर्णन से परे है, मैं वर्णन करने लायक नहीं हूँ। तेरी थोड़ी सी बढ़ाई भी जो मैं करता हूँ वह ही कहता हूँ जो तुझे अच्छी लगती है। भाव जितना

वर्णन करने के लिए तू खुद ही समझ देता है।३।

हे प्रभु! यहाँ (कामादिक) अनेक कुत्ते हैं, (मैं इनमें) बेगाना आ फंसा हूँ, (जितनी तेरी सिफत-सलाह करता हूँ वह भी अपने इस शरीर को कामादिक कुत्ते से) बचाने के लिए ही भौंकता हूँ (जैसे बेगाना कुत्ता दुश्मन कुत्ते से बचने के लिए भौंकता है)। मुझे यह भरोसा है कि जो (तेरा दास) नानक भक्ति से क्षीण है तो भी तू मेरे सिर पर रक्षक खसम (मालिक) है और तुझ खसम की यह शोभा दूर नहीं हो गई कि तू आदि समय से शरण आए की सहायता करता आया है। ४।१।

वैसाख-जेठ (ज्येष्ठ) के मास में गाँव से बाहर सीमा में देखो। प्रत्येक तरफ अक्कों के बूटे हरे-भरे दिखाई देते हैं। डालियों के साथ अंबाखड़िआँ कैसी सुन्दर लगती हैं। गाँव के बच्चे इनको आम समझ कर बड़े शौक से इनकी डालियों को तोड़ लेते है। परन्तु उनका सौंदर्य उतनी देर ही था, जितनी देर वह डाली के गले लगी हुई थीं। डाली से टूट कर वे कतरा-कतरा हो जाती हैं, वायु के गर्म झोंके उनको उड़ा के ले जाते हैं और अन्त काँटेदार झाड़ियों में फंस कर उनका स्वयंपन खत्म हो जाता है।

मनुष्य का अर्न्तमन भी तब तक सुन्दर रह सकता है, जब तक यह प्रभु-डाली के गले लगा रहता है। उस जीवन डाली से टूट कर दुनिया के अनेक चिंता-फिक्र इस निर्बल आत्मा को कतरा-कतरा कर देते हैं।

गुरू अर्जुन देव जी मनुष्य की इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे पौधे के गले लगी हुई अमबियां सुन्दर दिखाई देती हैं, इसी तरह मनुष्य की आत्मा का हाल है। डाल से टूटी पंखड़ियों की हज़ारो गाँठें बन जाती हैं, धनी-प्रभु से बिछुड़े इन्सान की आत्मा भी हज़ारों गमों का शिकार हो जाती है। आप फुर्माते हैं :

खखड़ीआ सुहावीआ, लगड़ीआ अक कंठि॥

बिरह विछोड़ा धणी सिउ, नानक सहसै गंठि॥१॥

विसारेदे मरि गए, मरि भि न सकहि मूलि॥

वेमुख होए राम ते, जिउ तसकर उपरि सूलि॥२॥

(श्लोक, म: ५, पंना ३१९)

इसलिए नाम-जपने का भाव प्रभु की याद को अपने मन में बसाना है, अपने आपको प्रभु की चरण-शरण में रखना है, अपनी सुरति को सर्वव्यापक सुरत से जोड़ कर रखना है और इसका तरीका (ढंग) प्रभु की सिफत सालाह (स्तुति) बढ़ाई-विचार अथवा इसके गुण गायन करना है।

लेख के अंत में हम भाई वीर सिंघ जी के विचार फिर से पेश करते हैं ताकि नाम-सिमरन का समूचा अर्थ स्पष्ट हो सके-

'नाम' एक आत्म विद्या है, जो जिज्ञासु की ईश्वर-प्राप्ति की अकांक्षा से लेकर, जप से प्रारम्भ होकर, साईं मिलाप तक ले जाती है। साईं की सिफत-सालाह, कीर्तन, उसके आगे विनय, उसका शुक्र, धन्यवाद आदि मन के ऊँचे भाव उस नाम के सहायक हैं, जो उस प्रभु-मिलाप का केवल साधन मात्र नहीं रहने देते, नाम को वह जीता जागता प्रेम बना देते हैं और साधक को भी जीवित कर देते हैं:

सो जीविआ, जिसु मनि वसिआ सोइ॥

नानक अवरु न जीवै कोइ॥१॥१०॥ *(माझ की वार, म: १, १४२)*

नाम का निवास और नाम की प्राप्ति

नाम मार्ग के पथिकों के मन में एक सवाल यह भी उठता है कि प्रभु का नाम है कहां? इस सवाल के जवाब की खोज में कई जिज्ञासु नाम-धारक साधू-संतों अथवा डम्मी 'गुरूओं' के डेरों में जाते हैं और मन की तृप्ति फिर भी नहीं होती। इस सवाल (और मनुष्य जीवन से सम्बन्धित अन्य और तरह के सवालों) के जवाब साहिब श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में मौजूद हैं। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि हम अन्य आसरे त्याग कर शब्द गुरू की शरण में आ जाएँ, बाणी को समझें, मानें अथवा अपने जीवन का आधार बनाएँ। तभी तो बाणी में से सतिगुरू के प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। गुरू वाक्य है :

बाणी गुरू, गुरू है बाणी, विचि बाणी अंम्रितु सारे॥
गुरु बाणी कहै, सेवकु जनु मानै,परतखि गुरू निसतारे॥५॥४॥

(नट, म: ४, पन्ना ९८२)

बाणी गुरू ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि प्रभु की तरह उसका नाम सर्वव्यापक है, प्रभु का नाम प्रभु की ज्योति का दूसरा नाम ही है जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान है:

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु॥
देही महि इस का बिस्रामु॥१॥२३॥

(गउड़ी सुखमनी, म: ५, २९३)

इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा॥
नामु निरंजनु अति अगम अपारा॥
गुरमुखि होवै सोई पाए,
आपे बखसि मिलावणिआ॥२॥५॥६॥

(माझ, म: ३, असटपदीआं ११२)

अर्थ : इस शरीर में बहुत विस्तार है, प्रभु का अपार नाम जो मन की पहुँच से दूर है, इसमें मौजूद है। गुरू वाला बनने से इस नाम की प्राप्ति होती है। गुरमुखों को प्रभु कृपा करके अपने साथ मिला लेता है।

गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि,
घटि घटि हरि भरपूरि रहिआ॥
नामु रतनु तिना हिरदै प्रगटिआ,
जो गुर सरणाई भजि पइआ॥२॥६॥

(प्रभाती, म: ३, १३३४)

अर्थ : प्रभु का नाम गुप्त तौर पर कलियुग में मौजूद है (प्रत्येक जगह और प्रत्येक हृदय में भरपूर हैं। पर यह नाम रत्न उन मनुष्यों के हृदय में प्रकट होता है, जो गुरू की शरण में आ जाते हैं।

घर ही महि अंम्रितु भरपूर है, मनमुखा सादु न पाइआ॥
जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै, भ्रमदा भरमि भुलाइआ॥२॥४॥

(वार सोरठि, म: ३, ६४४)

अर्थ: अमृत रूपी नाम प्रत्येक जीव के हृदय में है, पर अपने मन के पीछे चलने वालों को यह स्वादिष्ट नाम प्राप्त नहीं होता। जैसे कस्तूरी हिरण की नाभि में होती है, परन्तु उसको इस बात की सूझ नहीं होती और वह उस कस्तूरी की खोज में झाड़ियों में भटकता है।

मन रे, थिरु रहु, मतु कत जाही जीउ॥
बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि, घरि अंम्रितु घट माही जीउ॥ रहाउ॥ ६॥

(सोरठि, म: १, ५९८)

अर्थ : हे मन भटक न, स्थिर रह और प्रभु के नाम की खोज में कहीं और न जा क्योंकि प्रभु-नाम को हृदय से बाहर ढूंढने से

तो तू, दुःख ही पाएगा। आत्मिक जीवन देने वाला नाम-रस तेरे अंदर, तेरे हृदय में ही है।

वह 'नाम' जो ब्राह्मंड के कण-कण में प्रत्येक हृदय में मौजूद है, वह प्रभु की ज्योति ही है, जो गुप्त रूप में रह रही है। इस गुप्त ज्योति की सूझ अथवा प्राप्ति गुरू द्वारा ही होती है। गुरू आप प्रभु अकाल पुरुष से जुड़ा होता है और नाम मार्ग को भली-भांति जानता है, वह अपने सिखों को नाम की सूझ बख्शता है, नाम की दात बख्शता है और सिख नाम जप द्वारा प्रभु से लगन जोड़ने में समर्थ हो जाते हैं। गुरबाणी में इन विचारों की भरपूर व्याख्या की गई है। नीचे कुछ गुरू फुर्मान उदाहरण रूप में दिए जाते हैं:

नामु अमोलकु रतनु है, पूरे सतिगुरु पासि॥
सतिगुर सेवै लगिआ, कढि रतनु देवै परगासि॥

(सिरी रागु, मः ३, ४०)

अर्थ : प्रभु का नाम एक बहुमूल्य हीरा है, जो पूरे सतिगुरू के पास है। यदि सतिगुरू की सेवा में लग जाएं तो वह हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके अपने पास से नाम-रत्न देता है।

नामु इसटु, मीत, सुत, करता, मन संगि तुहारै चालै॥
करि सेवा सतिगुर अपुने की, गुर ते पाईऐ पालै॥३॥१५॥१५३॥

(गउड़ी, मः ५, २१३)

अर्थ : नाम ही पूजने-योग्य है, मित्र है, पुत्र है, रचनहार है। हे मेरे मन! नाम तेरे साथ चलता है। तू अपने सतिगुरू की सेवा कर (उसका हुक्म मान) गुरू का नाम तेरे पल्ले पड़ेगा अथवा प्राप्त होगा।

हरि नामु दीआ गुरि परउपकारी,
धनु धंनु गुरू का पिता माता॥
हंउ सतिगुर अपुणै कंउ सदा नमसकारी,

जितु मिलिऐ, हरि नामु मै जाता॥१६॥

(वार वडहंस, म: ४, पृ. ५८२)

अर्थ: परोपकारी सतिगुरू ने प्रभु का नाम बख़्शा है। ऐसे गुरू के माता-पिता धन्य भागी हैं (जिनके घर ऐसे गुरू ने जन्म लिया है। मैं अपने सतिगुरू को सदा नमस्कार करता हूँ, जिसके दर्शन करने से अथवा संगत करके मुझे प्रभु के नाम की सूझ हो गई है।)

रतनु जवेहरु लालु हरि नामा, गुरि काढि तली दिखलाइआ॥
भागहीण मनमुखि नही लीआ, त्रिण उलै लाखु छपाइआ॥३॥१॥

(रामकली, म: ४, ८८०)

अर्थ: हीरे और जवाहरों जैसा बहुमूल्य नाम गुरू ने हथेली पर रख कर बता दिया है, भाव गुप्त नाम को प्रकट कर दिया है।

सतिगुर ते हरि पाईऐ भाई॥
अंतरि नामु निधानु है,
पूरै सतिगुरि दीआ दिखाई॥१॥ रहाउ॥६॥२८॥

(आसा, म: ३, ४२५)

अर्थ: सतिगुरू से ही हरि-प्रभु की प्राप्ति होती है। हे भाई! तेरे अंदर नाम का खज़ाना है, जिसकी सूझ पूरे सतिगुरू से होती है।

सतिगुर सेवि नामु वसै मनि चीति॥
गुरु भेटे हरि नामु चेतावै,
बिनु नावै होर झूठु परीति॥१॥रहाउ॥
गुरि कहिआ सा कार कमावहु॥
सबदु चीन्हि सहज घरि आवहु॥
साचै नाइ वडाई पावहु॥२॥१॥३॥

(बिलावल, म: ३, असटपदीआं ८३२)

भाव अर्थ : सतिगुरू की सेवा से प्रभु का नाम मन-चित्त में बस जाता है। जब गुरू मिलता है तो उसे नाम की सूझ बख्शता है; नाम के बगैर अन्य पदार्थों से सब झूठी प्रीत है। जो गुरू ने कहा है, वही काम करो। गुरू शब्द के द्वारा अपनी जाँच करके आत्मिक अडोलता प्राप्त करें-सच्चे प्रभु का नाम और स्तुति की दात प्राप्त करें।

गुरू के बचन (बाणी, गुरबाणी, शब्द) सुनने, मानने व अमल (प्रयोग) में लाने से ही नाम की सूझ होती है। गुरू अपनी बाणी द्वारा सिख के हृदय को विकार-रहित करता है और नाम मार्ग पर चलाता है। गुरबाणी नाम के लक्ष्ण प्रकट करती है और गुरबाणी में लग कर मनुष्य हृदय में बसते (निवास करते) नाम में समा जाता है:

सबदै ही ते पाईऐ हरि नामे लगै पिआरु॥७॥८॥

(सिरी रागु, मः १, ५७)

जतु सतु संजमु नाम है, विणु नावै निरमलु न होए॥
पूरे भागि नामु मनि वसै, सबदि मिलावा होए॥४॥१७॥५०॥

(सिरी रागु, मः ३, पन्ना ३३)

जनु नानकु बोले गुण बाणी,
गुरबाणी हरि नामि समाइआ॥४॥५॥ *(गूजरी, मः ४, ४९४)*

अर्थ : दास नानक बाणी द्वारा गुण गायन करता है। वह बाणी द्वारा प्रभु के नाम में समा गया है।

गुरबाणी हमारे महान् सतिगुरों के दीर्घ विचारों और प्रभु के मिलाप की अनुभवता का निष्कर्ष है। इसलिए बाणी इस ब्रह्मण्ड के मूल तत्व का ज्ञान प्रदान करती है। इसमें परमात्मा के गुण, हमारे परमात्मा से और अन्य मनुष्यों से सम्बन्ध, जीवन आदर्श और इस आदर्श की प्राप्ति के बारे विचार दिए गए है। इन विचारों की

अनुभवता साधारण मनुष्य के सामर्थ्य से दूर होती है। बाणी के पाठ द्वारा साधारण जन, प्रभु से मिली (एक-मिक) हुई आत्माएँ (गुरू साहिबान) के अनुभव से लाभ उठा सकते हैं। जिस तरह पिता से पुत्र बहुत सारी बातें सीख सकता है, जो वह अपने अनुभव से नहीं सीख सकता अथवा एक विज्ञानी से आम आदमी विज्ञान के बारे में जानकारी हासिल करता है, उसी तरह गुरू-साहिब की रचित बाणी से साधारण मनुष्य प्रभु-प्राप्ति का ढंग और स्वच्छ जीवन-यापन सीखता है।

गुरबाणी का पाठ, विचार और अमल (प्रयोग) से जीवन आदर्श की प्राप्ति होती है और परमात्मा से सम्बन्ध (लिव) कायम किया जा सकता है।

गुरबाणी से ब्रह्मांड की विशालता की सूझ पड़ती है और इसको बनाने वाले परमात्मा (कादर-कर्त्ता) की असीम शक्ति का अनुभव और उसके विशाल होने की चेतनता पैदा होती है। इससे मनुष्य अपने आपको तुच्छ मानने लगता है और उसके भीतर से घमंड, अहंकार की भावनाएँ खत्म हो जाती हैं, जीवों से प्रेम बढ़ता है और परमात्मा के लिए प्यार और श्रद्धा पैदा होती है और बढ़ती है, मन में उसके गुण गायन करने का चाव पैदा होता है और मनुष्य उस परमात्मा की स्तुति (सिफत-सालाह) में लग जाता है, उससे सुरती जुड़ जाती है और अंत में उस (प्रभु) में अभेद हो जाता है। इसी को नाम की प्रासि कहते हैं। गुर वाक्य है:

प्रभ बेअंत गुरमति को पावहि॥
गुर कै सबदि मन कउ समझावहि॥
सतिगुर की बाणी सति सति करि मानहु,
इउ आतम रामै लीना हे॥१४॥६॥८॥

(मारू, म: १, १०२८)

समझाने से ही संम्भव है। शब्द अथवा सतिगुरू की बाणी को सत्य (सच्चा, सही, ठीक) करके मानने अथवा गुरबाणी में बतलाए रास्ते पर चलने से आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है।

गुरबाणी वरती जग अंतरि ,

इसु बाणी ते हरि नामु पाइदा॥३॥८॥२२॥ (मारु, मः ३, १०६६)

अर्थः गुरबाणी इस जग में प्रवाहित हो रही है। इस बाणी से ही नाम प्राप्त होता है।

अंम्रित बचन साध की बाणी॥

जो जो जपै, तिस की गति होवै,

हरि हरि नामु नित रसन बखानी॥१॥रहाउ॥३२॥३१॥

(सूही, मः ५, ७४४)

अर्थ : गुरू की बाणी उसके अमृत रूपी बचन हैं। जो इस बाणी का जाप करता है, उसकी मुक्ति होती है और वह मनुष्य प्रतिदिन जिह्वा से प्रभु का नाम जपने लग पड़ता है।

नानक गुरबाणी हरि पाइआ,

हरि जपु जपि समाहा हे॥१६॥५॥१४॥ (मारू, मः ३, १०२८)

अर्थ : हे नानक (जिसने भी प्रभु प्राप्त किया है उसने) गुरबाणी द्वारा ही प्रभु को प्राप्त किया है। वह गुरबाणी गायन करके, भाव हरि का जाप करके, हरि में समा गया है।

गुरबाणी ते हरि मंनि वसाए॥

नानक साचि रते प्रभि आपि मिलाए॥४॥३॥

(धनासरी, मः ३, ६६४)

अर्थ : मनुष्य गुरू की वाणी की बरकत से परमात्मा को अपने मन में बसा लेता है। हे नानक! जिन मनुष्यों को प्रभु ने अपने

चरणों में मिलाया है, वह उस सदैव-स्थिर प्रभु के रंग में रंगे रहते हैं।

इह बाणी जो जीअहु जाणै,

तिसु अंतरि रवै हरि नामा॥१॥रहाउ॥४॥ (बिलावल, म: ३, ७६८)

अर्थ : जो इस बाणी को दिल मन से जानता है अथवा बाणी का गायन और विचार करता है, उसके भीतर प्रभु का नाम समा जाता है।

गुरबाणी सुणि मैलु गवाए॥

सहजे हरि नामु मंनि वसाए॥१॥रहाउ॥५॥ (धनासरी, म: ३, ६६५)

अर्थ : हे भाई, गुरू की बाणी सुना कर। यह बाणी मन से विकारों की मैल दूर कर देती है। यह बाणी आत्मिक अडोलता में टिका कर परमात्मा का नाम मन में बसा देती है।

गुरमति हरि हरि मीठा लागा,

गुरु मीठे बचन कढावैगो॥

सतिगुर बाणी पुरखु पुरखोतम,

बाणी सिउ चितु लावैगो॥२॥

गुरबाणी सुनत मेरा मनु द्रविआ,

मनु भीना, निज घरि आवैगो॥

तह अनहत धुनी, बाजहि नित बाजे,

नीझर धार चुआवैगो॥

राम नामु इकु तिल तिल गावै,

मनु गुरमति नामि समावैगो॥

नामु सुणै, नामो मनि भावै,

नामे ही त्रिपतावैगो॥४॥१॥ (कानड़ा, म: ४, १३०८)

अर्थ : हे मन! गुरू की बुद्धि की बरकत से परमात्मा का नाम प्यारा लगने लगता है। गुरू अपने सिख के मुख से स्तुति के मीठे बचन ही निकलवाता है। गुरू की बाणी द्वारा सिख श्रेष्ठ पुरुष परमात्मा को मिल पड़ता है। इस तरह (सिख) सदैव गुरू की बाणी से (अपना) मन जोड़ता है। गुरू की बाणी से मेरा दिल पिघल जाता है, (नाम-रस से) भीग जाता है। बाहर भटकने की जगह अपने मूल रूप में टिका रहता है। हृदय में ऐसा आनंद बना रहता है, मानो उसमें एक स्वर से बाजे बजते रहते हैं, मानो झरने से पानी की धारा चलती है। (परमात्मा का भक्त) प्रत्येक समय, प्रत्येक श्वास के साथ परमात्मा का नाम जपता रहता है, गुरू की बुद्धि लेकर उसका मन नाम में सदैव मग्न रहता है। वह प्रत्येक समय परमात्मा का नाम सुनता है, नाम उसके मन को प्यारा लगता है और नाम के द्वारा ही वह (तृष्णा से) तृप्त रहता है।

यहाँ गुरबाणी में यह बात स्पष्ट की गई है कि प्रत्येक हृदय में निवास करते और सर्वव्यापक नाम की प्राप्ति गुरबाणी से होती है, वहाँ इस बात की और व्याख्या की गई है कि गुरबाणी द्वारा प्रभु की सिफत-सालाह (बड़ाई, कीर्ति, यश, गुण-गायन) से ही प्रभु-नाम प्राप्त होता है, मन प्रभु-नाम में लगता है अथवा प्रभु की प्राप्ति होती है :

हरि कीरति उतमु नामु है,
विचि कलिजुग करणी सारु॥
मति गुरमति कीरति पाईऐ
हरि नामा हरि उरि हारु॥२॥४॥ *(वार कानड़ा, म: ४, १३१४)*

जगि सुक्रितु कूरति नामु है, मेरी जिंदुड़ीए
हरि कीरति हरि मनि धारे राम॥१॥३॥ *(बिहागड़ा, म: ४, ५३९)*

अंम्रितु वेला सचु नाउ, वडिआई वीचारु॥ (जपु जी)

प्रभात समय प्रभु के नाम जपने का समय है, प्रभु की बढ़ाई का विचार करना ही नाम जपना है।

कलजुग महि कीरतनु परधाना॥

गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना॥६॥१॥५॥ (मारू, म: ५, १०७५)

विसरु नाही दातार आपणा नामु देहु॥

गुण गावा दिनु राति नानक चाउ एहु॥८॥२॥५॥१६॥

(सूही, म: ५, ७६२)

(नोट : इन पंक्तियों में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रभु का नाम जपने का अर्थ उसका गुण गायन करना ही है।)

साहिब श्री गुरू अमरदास जी भी यही बात स्पष्ट करते हैं कि सच्चे प्रभु की बाणी के अभ्यास से मनुष्य का हृदय पवित्र (विकार-रहित) हो जाता है और प्रभु की सिफत-सालाह द्वारा (गुण गायन करके) प्रभु के नाम की प्राप्ति होती है:

साची बाणी सूचा होए॥

गुण ते नामु परापति होए॥२॥३॥४२॥ (आसा, म: ३, ३६१)

अंत में हम यही कह सकते हैं कि :

(क) प्रभु का नाम (अथवा प्रभु) मनुष्य के हृदय में बसता है।

(ख) प्रभु का नाम (अथवा प्रभु का अस्तित्व) पूर्ण ब्राह्मंड में व्यापक है।

(ग) नाम की प्राप्ति सतिगुरू द्वारा होती है। सतिगुरू नाम की सूझ 'धुर की बाणी' द्वारा बख्शता है।

(घ) गुरबाणी द्वारा प्रभु भक्ति का ढंग है - प्रभु का गुण-गायन करना अथवा उसकी सिफत सालाह (स्तुति) अथवा कीर्ति (बढ़ाई) करना। गुरबाणी प्रभु के गुणों का भंडार है। गुरबाणी का पाठ, कीर्तन और प्रभु की सिफत सालाह (स्तुति) ही प्रभु का नाम जपना है।

फिर मोह के कीचड़ में डूब रहा है। तूझे अच्छे बुरे की जांच करनी नहीं आती॥२॥ (हे भाई!) यदि अंदर (मन में) लोभ की मैल है और लोभ आधीन हो कर कोई ठगी के काम करते हैं तो बाहर (तीर्थों पर) स्नान करने का क्या लाभ? भीतरी ऊंची अवस्था तभी बनेगी, यदि गुरू के बतलाए रास्ते पर चल कर सदैव प्रभु का पवित्र नाम जपेंगे॥३॥

हे मन! लोभ छोड़, निंदा और झूठ का त्याग कर। गुरू बचनों पर चलने से ही सदा स्थिर रहने वाला नाम रूपी अमृत फल मिलेगा। हे दास नानक! (प्रभु दर पर अरदास (विनय) कर और कह) हे प्रभु! जैसे तेरी रज़ा (इच्छा) है तैसे मुझे रख। (परन्तु यह कृपा कर कि) गुरू के शब्द में जुड़ कर मैं तेरी सिफत सालाह (स्तुति) करता रहूँ॥ ४॥ ८॥

स्पष्ट है कि :

1. मनुष्य का जीवन मनोरथ, अटल, आत्मिक जीवन देने वाला नाम अमृत जल प्राप्त करना है जो केवल सच्चे गुरू से ही प्राप्त हो सकता है।

2. यह अमृत जल किसी वेष धारण करने, तीर्थों पर स्नान करने, जंगलों में जाकर भटकने से प्राप्त नहीं हो सकता।

3. घमंड छोड़ कर, दुविधा का त्याग करके विकारों से ऊँचे उठकर गुरू के बतलाए रास्ते पर चलने से प्रभु की सच्ची सिफत-सालाह (स्तुति) करने से ही यह आत्मिक रस प्राप्त हो सकता है।

गुरू नानक पातिशाह फुर्माते हैं जिस मनुष्य के भीतर लालच, झूठ, ठगी, पराई निन्दा, क्रोध आदि विकार मौजूद हों और अन्य कई तरह के चस्के हों, उस मनुष्य के मन में नाम का निवास नहीं हो सकता। जिस मन में सोना, चांदी, घोड़े, महल, सुन्दर सेज, सुन्दर स्त्री और तरह-तरह के खाने-पीने के चस्के मौजूद हों, उस

मन में नाम का निवास नहीं हो सकता। प्रभु के नाम का निवास तो उस मनुष्य के हृदय में ही हो सकता है जो प्रभु को अच्छे लगने वाले बोल बोलता है अथवा प्रभु की सिफत सालाह करता है:

लबु कुता, कूड़ु चूहड़ा, ठगि खाधा मुरदारु॥
पर निंदा पर मलु मुखि सुधी, अगनि क्रोधु चंडालु॥
रस कस आपु सलाहणा, ए करम मेरे करतार॥१॥
बाबा, बोलीऔ पति होए॥
ऊतम से, दरि ऊतम कहीअहि नीच करम बहि रोए॥१॥रहाउ॥
रसु सुइना, रसु रुपा कामणि, रसु परमल की वासु॥
रसु घोड़े, रसु सेजा मंदर, रसु मीठा, रसु मासु॥
एते रस सरीर के, कै घटि नाम निवासु॥२॥
जितु बोलिऔ पति पाईऔ, सो बोलिआ परवाणु॥
फिका बोल विगुचणा, सुणि मूरख मन अजाण॥
जो तिसु भावहि से भले, होरि कि कहण वखाण॥३॥
तिन मति, तिन पति, तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाए॥
तिन का किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काए॥
नानक नदरी बाहरे, राचहि दानि, न नाए॥४॥४॥

(सिरी रागु, म: १, पंना १५)

अर्थ : हे भाई! वह बोल बोलना चाहिए जिससे प्रभु के दरबार में इज्ज़त मिले। वही मनुष्य वास्तव में अच्छे हैं जो प्रभु के दरबार में अच्छे कहे जाते हैं। मंद-कर्मी मनुष्य ग़मगीन ही बैठे रहते हैं।१ रहाउ।

हे मेरे करतार! मेरी तो ये करतूतें हैं- खाने का लालच मेरे अंदर कुत्ता है जो हर समय खाने को मांगता है, भौंकता है, झूठ की आदत मेरे अंदर (कही जाने वाली) नीच जाती है जिसने मुझे बहुत

नीचा कर दिया है, दूसरों को ठग कर खाना मेरे अंदर मुरदार है जो स्वार्थ की बदबू बढ़ा रहा है, पराई निंदा मेरे मुंह में पराई मैल है, क्रोध आग मेरे भीतर चंडाल बनी पड़ी है, मुझे कई चस्के हैं। मैं अपने आपको सलाहता हूँ।१।

सोना चांदी इकट्ठा करने का चस्का, स्त्री - अर्थात् काम का चस्का, सुगन्धियों की लगन, घोड़ों की सवारी का शौक, नर्म नर्म सेजें और सुन्दर महलों की लालसा, स्वादिष्ट मीठे पदार्थ और मांस खाने का चस्का। यदि मनुष्य के शरीर को इतने चस्के लगे हुए हों तो परमात्मा के नाम का ठिकाना किस हृदय में हो सकता है? ।२।

वही बोल बोला हुआ मंज़ूर है जिसके बोलने से प्रभु के दरबार में आदर मिलता है। हे मूर्ख अनजान मन, सुन! फीका नाम-रस से विहीन बोल बोलना भटकाता है, अर्थात् यदि सारी ज़िन्दगी केवल वही बातें करते रहे जो प्रभु की याद से खाली (शून्य) हों तो दुःखी ही रहना पड़ता है। प्रभु की स्तुति के बगैर अन्य बातें व्यर्थ है। जो मनुष्य प्रभु की स्तुति करके उस प्रभु को प्यारे लगते हैं, वह ही अच्छे हैं।३।

जिन मनुष्यों के हृदय में प्रभु प्रत्येक समय निवास कर रहा है, वह बुद्धिमान हैं, इज्ज़त वाले हैं और धन वाले हैं। ऐसे भले मनुष्यों की स्तुति की ही नहीं जा सकती। उन जैसा सुन्दर और कौन है? हे नानक! प्रभु की कृपा की दृष्टि से वंचित व्यक्ति उसके नाम में नहीं जुड़ते, उसके दिए धन, पदार्थ में मस्त रहते हैं।

भाव, जिस मनुष्य के मन में दुनिया के चस्के और विकारों का बल हो, वह परमात्मा के नाम में नहीं जुड़ सकता । चस्के, विकार और भक्ति एक हृदय में इकट्ठे नहीं नहीं हो सकते । ऐसा मनुष्य चाहे कितना भी अक्ल वाला, मान-सम्मान वाला और धनी हो उस का जीवन भटकने में ही गुज़रता है। चस्का कोई भी हो बुरा है। मनुष्य तब ही कुमार्ग पर चलता है जब शारीरिक आवश्यकताओं से

आगे निकल कर चस्के में फंस जाता है। यह चस्का चाहे धन एकत्र करने का हो, चाहे सुन्दर घर बनाने का हो, चाहे मिठाई खाने का है और चाहे मांस खाने का हो। चस्कों में फंसा जीव नाम नहीं जप सकता। यदि गुरू की शरण पड़ कर नाम जपे तो चस्कों से छूट सकता है।

नाम-मार्गी को इस संसार में विकारों, सांसारिक वस्तुएँ (धन, जायदाद, बेटी-बेटे, सुख साधन) के मोह से ऐसे निर्लेप (दूर) रहना पड़ता है जैसे मुर्गाबी पानी में रह कर पानी के प्रभाव से बची रहती है और कमल का फूल पानी में पैदा होकर, विकास करके भी अपने आपको पानी और कीचड़ से निर्लेप (दूर) रखता है। इसीलिए सतिगुरू जी फुर्माते हैं:

जैसे जल महि कमलु निरालमु, मुरगाई नै साणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ, नानक नामु वखाणै॥
रहहि इकांति एको मनि वसिआ, आसा माहि निरासो॥
अगमु अगोचरु देखि दिखाए, नानकु ताका दासो॥५॥

(रामकली, म: १, सिध गोसटि, १३८)

भावार्थ: जैसे पानी में कमल का फूल निर्लेप रहता है (हालांकि उसकी खुराक (भोजन) पानी में है)-पानी की सतह (स्तर) से ऊपर रहता है, जैसे मुर्गाबी नदी में रहती है और तैरती है परन्तु अपने पंखों को भीगने नहीं देती, ऐसे ही मनुष्यों को संसार में माया के कुप्रभाव से बचे रहना चाहिए। इस अवस्था में सुरति (ध्यान) को गुरू के शब्द (गुरबाणी) में जोड़कर भवसागर तैर जा सकता है। यही नाम जपना है। इस तरह संसार में रहते हुए माया से निर्लेप रहना है, आशा में निराशा होकर चलना है। यही (गुरमति में) 'एकांत' रहना है। इस तरह का शुभ बनकर नाम जपने वाला मनुष्य, उस निरंकार को जो मनुष्य मन की पहुँच से दूर है और इन्द्रियों के स्पर्श से दूर है, अनुभव कर सकता है और अन्यों को

भी अनुभव करा सकता है। सतिगुरू कहते हैं, मैं ऐसे पुरुष का दास हूँ।

इस मन को नाम के निवास को योग्य बना के प्रभु के सिमरन में लगाने का प्रत्यन करना है। यह सारी क्रिया (नाम जपने की विधि) का ब्यान गुरू नानक पातिशाह ऐसे करते है:

भांडा धोइ, बैसि धूपु देवहु तउ दूधै कउ जावहु॥
दूधु करम, फुनि सुरति समाइणु, होइ निरास जमावहु॥१॥
जपहु त एको नामा॥ अवरि निराफल कामा॥१॥रहाउ॥
इहु मनु ईटी हाथि करहु, फुनि नेत्रउ नीद ना आवै॥
रसना नामु जपहु, तब मथीऐ, इन बिधि अंम्रितु पावहु॥२॥
मनु संपटु जितु सत सरि नावणु, भावन पाती त्रिपति करे॥
पूजा प्राण सेवकु जे सेवे, इन बिधि साहिबु रवतु रहै॥३॥
कहदे कहहि, कहे कहि जावहि, तुम सरि अवरु न कोई॥
भगति हीणु नानकु जनु जंपै, हउ सालाही सचा सोई॥४॥१॥

(रागु सूही, म: १, चउपदे घर १, पृष्ठ ७२८)

पदअर्थ : निराफल–व्यर्थ। **धोइ**–धोकर। **बैसि**–बैठकर, टिक कर। **करम**–रोज़ाना। का काम। **समाइणु**–जाग। **निरास**–दुनिया की आशाओं से निर्लेप होकर। **नेत्रउ**–नेत्रा–मथनी के इर्द–गिर्द लपेटी जाने वाली रस्सी जिससे मधानी को घुमाकर चाटी में दूध विलोआ जाता है। **मथीए**–विलोना। **इन बिधि**–इस तरीके से। **संपट**–वह डब्बा जिसमें ठाकुर मूर्ति को रखते हैं। **सत सरि**–सत्य सरोवर में, साध संगत में। **भावन**–श्रद्धा, **पाती**–पत्रों से। **त्रिपति करे**– प्रसन्न करे। **पूजा प्राण**–जीवन प्रर्यन्त पूजा करे, आत्म कुर्बान करे, अपनापन छोड़े। **खतु रहै**–मिला रहता है। **तुम सरि**–तेरे बराबर, तुम्हारे सिमरन से। **अवरु** –अन्य प्रयत्न । **जंपै**–विनय करता है। **हउं**–मै। **सालाही**–स्तुति करुं।

अर्थ : हे भाई! यदि प्रभु को प्रसन्न करना है तो सिर्फ प्रभु-नाम जपो। सिमरन छोड़कर प्रभु को प्रसन्न करने के अन्य सभी प्रयत्न व्यर्थ है। रहाउ।

मक्खन प्राप्त करने के लिए, हे भाई! तुम पहले बर्तन धोकर बैठ के उस बर्तन को धूप दे कर, तब दूध लेने जाते हो। फिर जाग लगा कर उसको जमाते हो। इस तरह यदि नाम अमृत प्राप्त करना है तो हृदय को पवित्र करके मन को रोको, ऐसे इस हृदय-बर्तन को धूप दें, तब दूध लेने जाएं। रोज़ाना का कार्य दूध है। प्रभु-चरणों में प्रत्येक समय सुरति (ध्यान) लगाए रखना रोज़ाना के काम में जाग लगाना है, ध्यान की शक्ति से दुनिया की आशाओं से ऊपर उठें, इस तरह दूध जमाएं। भाव ध्यान की मदद से रोज़ाना काम करते हुए भी माया से विरक्ति ही रहेगी।१।

दूध मंथते समय तुम आंखों को नियंत्रण में रखते हो। अपने इस मन को वश में करो। आत्मिक जीवन के लिए इस तरह यह मन-काबू में रखो। माया के मोह की नींद मन पर प्रभाव न डाले यही है नेत्रा (मथनी)। जिह्वा से परमात्मा का नाम जपो। ज्यों-ज्यों नाम जपोगे, त्यों-त्यों यह रोज़ाना काम करते हुए ही नाम-अमृत प्राप्त कर लोगे। पुजारी मूर्ति को डिब्बे में रखता है, यदि जीव अपने मन को डिब्बा बनाए, उसमें परमात्मा का नाम टिका के रखे। उस नाम के द्वारा साध-संगति सरोवर में स्नान करे, मन में टिके प्रभु-ठाकुर को श्रद्धा के पत्रों से प्रसन्न करे, यदि जीव सेवक बन कर अपनापन छोड़कर, भीतर निवास करते ठाकुर की सेवा सिमरन करे तो इन तरीकों से वह जीव मालिक-प्रभु को सदैव मिला रहता है।

सिमरन से बगैर प्रभु को प्रसन्न करने के अन्य और प्रयत्न बताने वाले मनुष्य जो भी अन्य प्रयत्न बताते हैं, वह बतला-बतला के अपना जीवन समय व्यर्थ गंवा जाते हैं, क्योंकि हे प्रभु! तेरे सिमरन जैसा अन्य और कोई प्रयत्न नहीं है। गुरू साहिब प्रभु के

पास विनय करने का ढंग बताते हुए कहते हैं कि चाहे तेरा दास नानक भक्ति से विहीन है फिर भी यही विनय करता है कि मैं कायम रहने वाले प्रभु की सदा सिफत-सालाह(स्तुति) करता रहूँ।४।१।

जपु जी साहिब की अन्तिम पउड़ी में भी नाम-सिमरन के ढंग को स्पष्ट किया गया है। सतिगुरू फुर्माते हैं:

जतु पाहारा, धीरजु सुनिआरु॥ अहरणि मति, वेदु हथीआरु।
भउ खला, अगनि तप ताउ॥ भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल॥३८॥

(पन्ना ४)

पदअर्थ : जतु-अपनी शारीरिक इन्द्रियों को विकारों से रोके रखना। **पाहारा**-सुनार की भट्ठी। **सुनिआरु**-सुनार। **अहरणि**-लोहा। जिस ऊपर सुनार हथौड़े से गहने बनाता है। **मति**-अकल। **वेदु**-ज्ञान। **हथीआरू**-हथौड़े। **भउ**-अकाल पुरुष का डर। **खला**-धौंकनी, जिससे सुनार फूंक मार कर अग्नि जलाते है। **तप ताउ**-तपों का तपना, परिश्रम करना। **भांडा**-कुठाली। **भाउ**-प्रेम। **अंम्रितु**-अकाल पुरुष का अमर करने वाला नाम। **तितु**-उस बर्तन में। **घड़ीए सबदि**-घड़ा जाता है। **टकसाल**-सिक्के (रुपए आदि) ढालने वाली जगह।

अर्थ : इन्द्रियों पर काबू रखना सुनार की भट्ठी समझो, धैर्य को सुनार बनाओ अपनी बुद्धि को अहिरण बनाओ और ज्ञान को गहने ढालने वाला हथौड़ा बनाओ। अकाल पुरुष के डर को धौंकनी बनाओ। मेहनत की कमाई रूपी आग ऊँचे आचरण की भट्ठी में जलाओ, प्रभु प्रेम को कुठाली में नाम अमृत ढालें। यही सच्ची टकसाल है जिसमें शब्द ढाला जाता है; भाव ऐसी अवस्था बन जाती है जिसमें पहुँचना गुरू के शब्द का मनोरथ है। मनुष्य नाम-सिमरन द्वारा-प्रभु में लीन हो जाता है इसलिए प्रभु का नाम जपना एक अच्छा जीवन-ढंग अपनाना है, जिसकी अगवाई गुरबाणी में दी

गई है। इस जीवन जाँच में शारीरिक इन्द्रियों पर काबू रखना भाव ऊँचा आचरण बनाना, मन को ढालने के लिए धैर्य धारण करना, गुरू के ज्ञान से बुद्धि ऊँची करना, मन में प्रभु का डर रखना आदि परिश्रम करना अति आवश्यक है। मन में प्रभु के लिए श्रद्धा और प्रेम का होना आवश्यक है। गुरू पातिशाह के समझाने का ढंग बहुत सरल है। मनुष्य जैसा व्यवसाय करते थे, धार्मिक कर्म-कांड करते थे अथवा कोई विशेष वेश धारण करते थे, सतिगुरू जी उनके काम, वेश और कर्म-कांडों की शब्दावली प्रयोग करके गुरमति की बात समझा देते थे। नाम सिमरन की विधि (ढंग अथवा तरीका) को भी इसी तरह समझाया गया है।

गुरू नानक साहिब के समय योग-मत का काफी प्रचार था। ये लोग सुरति (ध्यान) को टिकाने अथवा मन की बराबरता के लिए शराब (मदिरापान) सेवन करना अति आवश्यक समझते थे। सतिगुरु जी ने उनको समझाया कि नाम सिमरन करना ही सुरति (ध्यान) को प्रभु चरणों में जोड़ने और आत्मिक अडोलता प्राप्त करने का एक साधन है। जो मनुष्य नाम-अमृत पीने लग पड़ता है वह शराब से घृणा करने लग पड़ता है। योगियों को नाम-जपने का ढंग समझाने के लिए सतिगुरू जी ने शराब बनाने की क्रिया से सम्बन्धित शब्दावली का प्रयोग किया। आप फुर्माते है:

गुड़ करि गिआनु, धिआनु करि धावै, करि करणी कसु पाईऐ॥
भाठी भवनु, प्रेम का पोचा, इतु रसि अमिउ चुआईऐ॥१॥
बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै, सहज रंग रचि रहिआ॥
अहि, निसि बनी प्रेम लिव लागी, सबदु अनाहद गहिआ॥१॥रहाउ॥
पूरा साचु पिआला सहजे तिसहि पीआए, जा कउ नदरि करे॥
अंम्रित का वापारी होवै, किआ मदि छूछै भाउ धरे॥२॥
गुर की साखी अंम्रित बाणी, पीवत ही परवाणु भइआ॥

दर दरसन का प्रीतमु होवै, मुकति बैकुंठै करै किआ॥३॥
सिफती रता सद बैरागी, जूऐ जनमु न हारै॥
कहु नानक, सुणि भरथरि जोगी, खीवा अंम्रित धारै॥४॥४॥३८॥

(आसा, महला १, पंना ३६०)

पद अर्थ : बाबा-हे जोगी। **मतवारो**-मस्त। **सहज**-अडोलता। **अहि**-दिन। **निसि**-रात। **अनाहद**-एक रस, लगातार। **गहिआ**-पकड़ा, ग्रहण किया॥१॥रहाउ॥

गिआनु-अकाल पुरुष से गहरा सम्बम्ध। **धिआनु**-प्रभु की याद में सुरति जुड़ी रहनी। **धावै**-महुए(एक प्रकार का वृक्ष) के फूल। **करणी**-उँचा आचरण। **कसु**-कीकर की छाल। **भवनु**-शरीर। **भाठी**-भट्ठी(उतारने वाला बर्तन, बर्तन के ऊपर नली और नीचे आग) **इतु रसि** -इस रस द्वारा। **अमिउ**-अमृत॥१॥

पूरा-सभी गुणों का मालिक प्रभु। **साचु**-सदा टिके रहने वाला। **मदि**-शराब में। **छूछै**-फोके। **भाउ**-प्यार॥२॥ **साखी**-उपदेश, शिक्षा। **परवाणु**-कबूल॥३॥

रता-रंगा हुआ। **जूऐ**-जूए में। **खीवा**-मस्त। **धारै**-ध्यान में, लिव में॥४॥

अर्थ : हे जोगी! तुम ध्यान को सिद्ध करने के लिए शराब पीते हो, यह नशा उतर जाता है और ध्यान फिर भटक जाता है। वास्तव में मस्ताना वह मन है जो परमात्मा के सिमरन का रस पीता है सिमरन का आनन्द प्राप्त करता है, जो (स्मरण की शक्ति से) अडोलता के झोकों में टिका रहता है, जिसको प्रभु चरणों के प्रेम की इतनी लगन लगती है कि दिन रात बनी रहती है, जो अपने गुरू के शब्द को सदैव एक-रस अपने भीतर टिकाई रखता है॥१॥ रहाउ॥

(हे भाई!)परमात्मा से गहरी भाईचारे (सांझ) को गुड़ बना, प्रभु

चरणों में जुड़ी सुरति (ध्यान) को महुए के फूल बना, ऊँचे आचरण को कीकरों के वृक्ष की छाल बना के इनमें मिला दे। शरीर के मोह को जला दो। यह शराब निकालने की भट्ठी तैयार कर, प्रभु चरणों में प्यार लगा। यह वह शीतल पोचा है जो अर्क वाली नली पर फेरना है। इस सारे मिले रस में से (अटल आत्मिक जीवन दाता) अमृत निकलेगा॥१॥

(हे जोगी!) यह है वह प्याला जिसकी मस्ती सदा टिकी रहती है। सभी गुणों का मालिक प्रभु अडोलता में रख कर उस मनुष्य को यह प्याला पिलाता है, जिसके ऊपर वह खुद मेहर (कृपा) की नज़र करता है। जो मनुष्य अटल आत्मिक जीवन देने वाला इस रस का व्यापारी बन जाए वह तुम्हारी तरह इस ओछे शराब के नशे से प्यार नहीं करता॥२॥

जिस मनुष्य ने अटल आत्मिक जीवन देने वाली गुरू की शिक्षा भरी वाणी का रस पिया है, वह पीते ही प्रभु की नज़रों में कबूल हो जाता है। वह परमात्मा के दर के दीदार का प्रेमी बन जाता है। उसको न मुक्ति की आवश्यकता रहती है और न बैकुंठ की॥३॥

हे नानक! (कह) हे भरथर जोगी! जो मनुष्य प्रभु की सिफति सालाह (स्तुति) में रंग गया है, सदैव माया के मोह से विरक्त (निर्लेप) रहता है, वह अपना मनुष्य जीवन जूए में भाव व्यर्थ नहीं गंवाता, वह तो अटल आत्मिक जीवन दाते आनन्द में मस्त रहता है॥४॥

इस शब्द में भी स्पष्ट किया गया है नाम सिमरन के लिए अकाल पुरुष का ज्ञान (उसके गुण जो सतिगुरू से पता चलते हैं) प्रभु की याद में सुरति जोड़नी, ऊँचा आचरण बनाना, शारीरिक मोह को त्यागना और प्रभु प्यार बहुत ज़रूरी है। इनको जीवन जीने के अंग बनाने से ही नाम जल की प्राप्ति होती है। मन की ऐसी

बनावट गुरू के उपदेश द्वारा ही बनाई जा सकती है। जिसके निष्कर्ष में मनुष्य प्रभु की नज़रों में कबूल हो जाता है, वह प्रभु के दर का प्रेमी बन जाता है और उसकी प्रभु में एकाग्रता हो जाती है। यही तो नाम सिमरन है।

सोरठि राग में उच्चारण किए गए शब्द में गुरू नानक देव जी रोज़ी कमाने के चार मुख्य ढंगों (खेतीबाड़ी, दुकानदारी, सौदागरी, व्यापार और नौकरी) की उदाहरणें देकर नाम जपने का ढंग समझाते हैं। इस शब्द में भी आपने समझाया है कि नाम जपने के लिए सांसारिक वस्तुएं (माया) का मोह त्यागना बहुत ज़रूरी है और ऊंचा आचरण मेहनत (परिश्रम) प्रभु-प्रेम, प्रभु की कृपा, ऊंची सुरति, ऊंचे सच्चे विचार, अच्छे गुणों को धारण करना, अच्छे काम करने, प्रभु हुक्म को मानना जिसकी सूझ गुरू बख्शता है विकारों का त्याग आदि को जीवन का अंग बनाना आदि आवश्यक है। शब्द इस प्रकार है:

मनु हाली, किरसाणी करणी, सरमु पाणी, तनु खेतु॥
नामु बीजु, संतोखु सुहागा, रखु गरीबी वेसु॥
भाउ करम करि जंमसी, से घर भागठ देखु॥१॥
बाबा, माइआ साथि न होए॥
इनि माइआ जगु मोहिआ, विरला बूझै कोए।रहाउ॥
हाणु हटु करि आरजा, सचु नामु करि वथु॥
सुरति सोच करि भांडसाल, तिसु विचि, तिस नो रखु॥
वणजारिआ सिउ वणजु करि, लै लाहा मन हसु॥२॥
सुणि सासत सउदागरी, सतु घोड़े लै चलु॥
खरचु बंनु चंगिआईआ, मतु मन जाणहि कलु॥
निरंकार कै देसि जाहि, ता सुखि लहहि महलु॥३॥
लाइ चितु करि चाकरी, मंनि नामु, करि कंमु॥

बंनु बदीआ करि धावणी, ता को आखै धंनु॥

नानक, वेखै नदरि करि, चड़ै चवगण वंनु॥४॥२॥

(सोरठि, महला १, घरु १, पंना ५७५)

पद अर्थ : करणी-ऊँचा आचरण। **सरमु**-(श्रम) मेहनत, परिश्रम। **राखु**-रखवाला। **भाउ**-प्रेम। **करम**-बख़्शिश। **भागठ**-भाग्यवान, अमीर॥१॥

हाणु-बीनता, गुज़रना। **आरजा**-आयु। **हटु**-दुकान। **वथु**-सौदा। **सोच**-विचार। **भांडसाल**-बर्तनों की कतार। **मन हसु**-मन का हास्य मन का खिलना।२।

सासत-धर्म पुस्तकें। **सतु**-ऊँचा आचरण। **मतु जाणहि कलु**-कल को न जान, कल पर न डालना। **सुखि**-आत्मिक आनंद में। महलु-ठिकाना। **चाकरी**-नौकरी। **बंन**-रोककर रखना। **धावणी**-भाग-दौड़। **चवगण**-चार गुणा। **वंनु**-रंग।४।

अर्थ : शब्द का केन्द्रीय भाव यह है कि माया मरणोपरान्त मनुष्य के साथ नहीं जाती। इस बात की सूझ किसी विरले मनुष्य को ही होती है कि माया ने सारे संसार को अपने वश में किया हुआ है।१।रहाउ।

शब्द के पहले भाग में गुरू साहिब खेती-बाड़ी के कार्य का उदाहरण देते हैं। आप फुर्माते हैं हे भाई! सदा साथ रहने वाला धन कमाने के लिए मन को किसान जैसा परिश्रमी बना, ऊँचे आचरण को खेती-बाड़ी का काम समझ, परिश्रम रूपी पानी से शरीर रूपी पैली(खेत) में परमात्मा के नाम के बीज बो। जैसे बीज को पक्षियों से बचाने का लिए किसान सुहागा फेरता है वैसे ही मनुष्य को तृष्णा आदि के प्रभाव से बचने के लिए संतोष रूपी सुहागा प्रयोग करना चाहिए और सादे जीवन को रक्षक बनाना चाहिए ताकि नाम रूपी फसल प्रफुल्लित हो सके। इस तरह की गई खेती तो नाम

रूपी धन है जिनसे वह अमीर हो गए हैं।१।

दूसरे भाग में दुकानदारी का उदाहरण देते हुए गुरू साहिब समझाते हैं कि हे मनुष्य अपनी आयु के प्रत्येक श्वास को दुकान बना, इस दुकान में सदैव स्थिर रहने वाले हरि नाम को सौदा बना। अपने ध्यान और विचार-मंडल के बर्तनों की लाईन बना तथा इस में हरि नाम रूपी सौदे को रख ऐसा नाम व्यापार करने वाले संतसंगिओं से मिलकर तू भी वाहिगुरू नाम का व्यापार कर। ऐसा करने से मन में चाव पैदा होगा।२।

तीसरे भाग में साहिब बतलाते हैं कि धर्म पुस्तकों के उपदेश की सौदागरी कर, भाव आत्मिक कल्याण देने वाली पुस्तकों की शिक्षा को विचार। इस सौदागरी के लिए ऊँचे आचरण को घोड़े बना के चल। इस ज़िन्दगी के सफ़र में खर्च करने के लिए उत्तम गुणों को पल्ले बाँध ले। इस सौदागरी को कल पर न छोड़, भाव ढील मत कर। अभी ही यह सौदागरी आरम्भ कर दे। यह व्यापार करने से यदि तेरा मन प्रभु चरणों में सदैव के लिए जुड़ जाए तो तुझे आत्मिक सुख (आनन्द) की प्राप्ति हो जाएगी।३।

अंत में नौकरी का उदाहरण देते हुए गुरु साहिब फुर्माते हैं कि हे मनुष्य! तू पूरे ध्यान से प्रभु मालिक की नौकरी कर और जैसे नौकर अपने मालिक के हुक्म में रहता है, तू भी परमात्मा मालिक के नाम को दृढ़ कर ले यही उसकी सेवा है। जैसे नौकर नौकरी के समय दौड़-धूप करता है हे मूर्ख तू भी विकारों को अपने निकट न आने दे, यही तेरी दौड़-धूप है। यदि तू ऐसा करेगा तो सभी तुझे शाबाश कहेंगे। वाहिगुरू भी तेरे ऊपर कृपा दृष्टि करेगा, जिससे तेरी आत्मा पर चौगुणा आत्मिक रूप चढ़ेगा।४।

भक्त नामदेव जी ने नाम सिमरन के ढंग का बहुत खूबसूरती से वर्णन किया है। आप समझाते हैं कि संसार के कार्य करते हुए अपने फर्ज़ों की पूर्ति करते हुए, अपने चित्त को प्रभु-चरणों से जोड़ी

रखना ही सिमरन है। यह बात भगत नामदेव जी ने भगत त्रिलोचन जी के इस प्रश्न के उत्तर में कही थी तुम तो अपने व्यवसाय में व्यस्त रहते हो, प्रभु के नाम में चित्त क्यों नहीं जोड़ते? सवाल जवाब इस तरह है:

नामा माइआ मोहिआ, कहै तिलोचनु मीतु॥

काहे छीपहु छाइलै, राम न लावहु चीतु॥२१२॥

नामा कहै तिलोचना, मुख ते रामु संमालि॥

हाथ पाउ करि कामु सभु, चीतु निरंजन नालि॥२१३॥

(श्लोक, कबीर जीउ, १३७५-७६)

अर्थ : त्रिलोचन कहता है, हे मित्र नामदेव! तू तो माया में फंसा पड़ा है यह छपाई का काम क्यों कर रहा है? परमात्मा के चरणों से मन क्यों नहीं जोड़ता?॥२।२॥

नामदेव (उत्तर में) कहता है-हे त्रिलोचन! मुँह से परमात्मा का नाम ले। हाथ पाँव प्रयोग कर के सारा कार्य कर और अपना मन परमात्मा से ज़ोड़॥२।३॥

अपने इस विचार को भगत जी ने कुछ उदाहरणें देकर समझाया है। आप जी समझाते हैं कि सांसारिक काम करते हुए प्रभु से मन ऐसे लगाना है जैसे पतंग उड़ा रहा लड़का दोस्तों से गप्पें मारता है परन्तु ध्यान पतंग में होता है, जैसे सुनार अन्यों से बातें करता हुआ भी गहने बड़ी होशियारी से बनाता है और बहुत बारीक कार्य आसानी से कर लेता है, जैसे युवतियों सिर पर पानी के दो-दो घड़े उठाकर चलती हैं और गप्पें हाँकती हैं, परन्तु ध्यान घड़े में रखती हैं और उनको गिरने नहीं देतीं, जैसे गाय बच्चे बछड़े को घर छोड़ कर कई कोस दूर घास चरने जाती हैं, पर मन उसमें रखती है, और जैसे माँ बालक को झूले में डाल कर घर का सारा कार्य करती है, पर उसका ध्यान (सुरति) बालक में ही होती है। (घूम-घूम कर

झूले की ओर आती है, झूला देती है) पूरा शब्द इस प्रकार है:

आनीले कागदु, काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले॥
पंच जना सिउ बात बतऊआ, चीतु सु डोरी राखीअले। ।१॥
मनु, रामु नामा बेधीअले॥
जैसे कनिक कला चितु मांडीअले॥१॥रहाउ॥
आनीले कुंभु भराई ले ऊदक, राज कुआरि पुरंदरीऐ॥
हसत बिनोद बीचार करती है, चीतु सु गागरि राखीअले॥२॥
मंदरु एकु दुआर दस जा के, गऊ चरावन छाडीअले॥
पांच कोस पर गऊ चरावत, चीतु सु बछरा राखीअले॥३॥
कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन, बालकु पालन पउढीअले॥
अंतरि बाहरि काज बिरूधी, चीतु सु बारिक राखीअले॥४॥१॥

(बाणी नामदेव जीउ की, रामकली, घर १, पंना ९७२)

पद अर्थ : आनीले-ले आया। **काटीले**-काट के बनाया। **मधे**-में। **भरमीअले**-उड़ाई। **बात बतऊआ**-बात-चीत, गप्पें।१। **बेधीअले**-चीर गया है। **कनिक**-सोना। **कला**-हुनर (Art)। **कनिक क़ला**-सोने का कारीगर, सुनार। **मांडीअले**-(सोने में) जुड़ा रहता।१।रहाउ॥

कुंभ-घड़ा। **ऊदक**-पानी। **कुआरि**-कुंआरी(अविवाहित)। **राज कुआरि**-जवान युवतियाँ। **पुरंदरीए**-(पुर+अंदर) शहर में से। **हसत**-हँसती हुई। **विनोद**-हँसी की बातें।२।

पालन-झूला। **पउढी अले**-डाला होता है। **बिरूधी**-लगी हुई।५।

अर्थः (हे त्रिलोचन! देख लड़का) कागज़ लाता है, उसकी पतंग बनाता है और पतंग को आसमान में उड़ाता है, साथियों से गप्पें भी मारी जाता है, पर उसका मन पतंग की डोर में टिका रहता है।१। रहाउ॥

(हे त्रिलोचन!) युवतियाँ शहर में से (बाहर जाती हैं) अपना अपना घड़ा उठाती हैं, पानी से भरती हैं, (आपस में) हँसती हैं, हंसने की बांतें और अन्य कई विचार करती हैं, पर अपना मन अपने-अपने घड़े में रखती हैं।२।

(हे त्रिलोचन!) एक घर है जिसके दस दरवाज़े हैं। इस घर से मनुष्य गायों को चराने के लिए छोड़ता है। ये गौएँ पाँच कोस पर जाकर घास खाती हैं, परन्तु अपना मन अपने बछड़े में रखती हैं। (वैसे ही दस-इन्द्रियाँ वाले इस शरीर में से मेरी ज्ञानेन्दियां शरीर के निर्वाह के लिए कार्य करती हैं परन्तु मेरी सुरति (ध्यान) परमात्मा के चरणों में ही है।३।

हे त्रिलोचन! सुन, नामदेव (एक अन्य दृष्टांत) कहता है-माँ अपने बालक (बच्चे) को झूले में डालती है, उसको छोड़कर बाहर कामों में लगी रहती है, परन्तु ध्यान अपने बच्चे में रखती है।४।१।

सुखमनी साहिब की अन्तिम (२४वीं) अष्टपदी में साहिब श्री गुरू अर्जुन देव जी ने नाम-सिमरन के अंग गिन-गिन कर बतलाए हैं। सतिगुरू जी ने यह निर्णय दिया है कि जो भी इन अंगों को मुख्य रख के नाम-अभ्यास की कमाई करेगा, वह अपने मन में नाम का भंडार भर लेगा:

पूरे गुर का सुनि उपदेसु॥ पारब्रहमु निकटि करि पेखु॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद॥ मन अंतर की उतरै चिंद॥
आस अनित तिआगहु तरंग॥ संत जना की धूरि मन मंग॥
आपु छोडि, बेनती करहु॥ साध संगि, अगनि सागरु तरहु॥
हरि धन के, भरि लेहु भंडार॥ नानक गुर पूरे नमसकारु॥१४॥

(गउड़ी, सुखमनी, म: ५, १८५)

इस तरह नाम मार्ग के अंग हैं:

(1) पूरे गुरू (साहिब श्री ग्रन्थ साहिब जी) का उपदेश सुनना।

(2) प्रभु को प्रत्येक समय निकट (अंग-संग) प्रतीत करना।

(3) प्रभु की याद में मन में बसाना (हर श्वास या साँस), में प्रभु की स्तुति द्वारा)!

(4) आशा रूपी न रहने वाली तरंगों (लहरों) का त्याग। साँसारिक वस्तुओं के मोह का त्याग।

(5) गुरमुखों की चरण-धूलि प्राप्त करने की इच्छा अथवा गुरमुखों की संगत की लालसा और उत्साह।

(6) अंहकार की भावना अपने अलग अस्तित्व का अनुभव त्याग कर प्रभु के आगे विनय करना।

(7) साध-संगति में जाकर, प्रभु यश (कीर्ति) करके रूपी अग्नि-सागर को पार करने का प्रयत्न करना।

(8) आठवें अंग में फिर पहली बात ही दोहराई है कि पूरे गुरू को नमस्कार करते रहना है, अर्थात् उसका हुक्म मानते रहना है। इस तरह जीवन व्यतीत करने से मन में प्रभु के नाम का भंडार भर जाता है ।

गुरबाणी के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि नाम जपने का ढंग एक आदर्श जीवन-पद्धति को अपनाना है। जो है, सांसारिक कार्य करते हुए माया (सांसारिक वस्तुओं के मोह) के प्रभाव से बच कर रहना, विकारों से बच कर रहना और शुभ विचार मन में धारण करके निरंतर कार्य (अमल) करने, प्रभु के भय में रहना और उससे निरंतर प्यार पैदा करना और बढ़ाना। यह जीवन-पद्धति गुरू के शब्द से सीखी जा सकती है अथवा ऐसे कहें कि गुरबाणी के अनुसार जीवन जीना है। प्रभु से निरंतर जुड़े रहना उसकी स्तुति,

कीर्ति, यश, बढ़ाई करनी इस जीवन पद्धति का मुख्य अंग है।

गुरबाणी में आए इन विचारों के आधार पर गुरमुख-विद्वानों नें नाम-मार्ग की सीढ़ियां और नाम-जप विधि को सरल भाषा में वर्णन किया है ताकि आम (साधारण) लोगों को नाम-जप अथवा नाम-सिमरन के सिद्धान्त की समझ आ जाए और नाम-मार्ग पर चलने का ढंग पता चल जाए।

भाई साहिब डॉ० वीर सिंघ जी नाम-जप द्वारा प्रभु-पति से मिलाप की सीढ़ियों को ऐसे ब्यान करते हैं:

1. पहले नाम अभ्यासी रसना (जीभ) से नाम का जप करता है। यह भाव उसके मन्न में चाहिए कि यह नाम जगत के मालिक का है जो हमार प्रियतम है और हमें प्रेम करता है और यह भावना चाहिए कि इस नाम के अभ्यास ने ध्यान को उसमें ले जाना है। गुरू साहिब जी की आज्ञा है:

रसना जपीअै एकु नाम॥१॥८॥१४६॥ *(गाउड़ी, म: ५, २११)*

फिर फल बताते हैं-

रसना नामु जपहु, तब मथीअै इन बिधि अंम्रितु पावहु॥२॥१॥

(सूही, म:१, ७२८)

2. इस तरह के भाव और भावना से किया गया जप कुछ समय में सिमरन बन जाता है अर्थात् हृदय में नाम टिक जाता है। गुरू साहिब जी को आज्ञा है:

हिरदै नामु वासइहु॥१॥२॥५२॥

(सोरठि, म: ५, ६२१)

फिर फल बताते हैं -

हिरदै एको नामु वसै हउमै दुबिधा मारि॥७॥१४॥

(आसा, म: २, ४२१)

हिरदै नामु सदा किरतारथु॥६॥२॥

(बिलावल, मः १, ८३२)

हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमति पाई॥४॥१॥

(सारंग, मः १, १२३२)

3. जब मन तन इस सिमरन में रच जाते हैं, मैल दूर हो जाती है, तब नाम, रस रूप हो जाता है। रोम-रोम में एक विश्वास अथवा अहसास हो जाता है कि मानो हर रोम में नाम रस है। इसे रोम-रोम याद करना कहा जाता है।

गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै॥२७॥

(सिधि गोसटि, ८४१)

रोमि रोमि हरि उचरै, खिनु खिनु हरि सोई॥२५॥

(वार सारंग, मः ४, १२४७)

रोमे रोमि, रोमि रोमे मै गुरमुखि रामु धिआए राम॥

(आसा, मः ४, छंत घरु १, पंना ४४३)

यह जो रोम-रोम में नाम की रस रूपता है, यही लाख बीस लाख होना है। एक बार नाम कहने से फिर सारा चक्कर मानो जिहा से बीस लाख के बराबर हो जाता है। लाख करोड़ों की गिनती नहीं गिनी जाती, भाव कि लगातार हो जाता है। लाख करोड़ कहने से भाव अधिकता का हुआ करता है।

४. यह नाम का रस रूपी विश्वास केवल शरीर में नहीं अटकता, कई बार चारों ओर प्रतीत होता है कि यह नाम रस भरपूर है। जहाँ दृष्टि जाती है सुन्दरता और रस का प्रभाव छाया अनुभव होता है। हर जगह नाम दिखाई देता है:

धरति पातालु आकासु है मेरी जिंदुड़ीए,
सभि हरि हरि नामु धिआवै राम॥
पउणु पाणी बैसंतरो मेरी जिंदुड़ीए,

नित हरि हरि हरि जसु गावै राम॥४॥४॥

(बिहागड़ा, म: ४, छंत घर १, पंना ५४०)

५. इसके आगे फिर जगदीश्वर जी अपनी कृपा से तदरूपता में ले जाते हैं, यथा :

जन नानक, हरि हरि होइआ हरि हरि मनि वुठा॥४॥१२॥

(आसा, म: ४, छंत, पंना ४५१)

बांह पकड़ि ठाकुरि हउ घिधी...॥

(जैतसरी, म: ५, छंत १, पंना ७०४)

नानक नदरी नदरि निहाल॥३८॥

(जपु जी, ८)

नाम सिमरन के ढंग के बारे में भाई साहिब लिखते हैं :

'जपु' (संस: जपु बोलना, ऐसा बोलना जो सुनाई न दे पाठ, चुप चाप का पाठ) मंत्र का उच्चारण, पाठ । ...जप करने का भाव इस तरह का रटन मात्र नहीं, जिस तरह की मशीन में से कोई आवाज़ होती है। मशीन निर्जीव है, जबकि जपने वाला सजीव है, जपने वाले का ध्यान जप करते समय जप जिसको बताता है, उस ओर सहजे ही जाना है, चाहे थोड़ा जाए या बहुत, यही 'जपु' का प्रयोजन है कि जप से ध्यान फिर जपे जाने वाले की ओर जाए।

धावतु वरजि रहाए॥ ६४॥

(रामकली, महला १, सिध गोसटि,९४५)

इसीलिए हुक्म है कि जप करते समय यदि मन दौड़े तो उसे रोक कर जप के लक्ष्य की ओर लाएं। फिर जिससे मन बार-बार जुड़ेगा, उससे प्रेम हो जायेगा, यही प्रेम मिलाप कराएगा।

इसलिए जपे जाने वाले पद के अर्थ भाव में, दिल से जाप करें अथवा जप बाणी पढ़ें तो मन की एकाग्रता, जो बिखरी रहती है, वह जपे जाने वाले पर पड़े और केवल उस एक पर ही पड़े।

ध्यान को लगाने का जरिया नाम का जाप है, नाम का सिमरन है। जिसको याद करने वाली शक्ति कहें, सुरति कहें, मन कहें, अंदरूनी ध्यान ने बाहर से अंदर की ओर मोड़ना है, नाम ने बाहर ज़ाती सुरति अर्न्तमुखी करनी है और अंत ध्यान लगा कर उस एक पर कायम हो जाना है, ऐसे उसकी जो अंदर है, दिखाई प्राप्त हो जानी है, जो मन बुद्धि आत्मा में मौजूद है और हमारी भूल करके दिखाई नहीं देता, याद से देखा जाएगा।

विद्वानों के कुछ ख्याल जप की सफलता में सहायक हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. जप के लिए, स्थान स्वच्छ होना चाहिए और जितना एकान्त मिल सके, प्राप्त किया जाए।

2. शरीर स्नान अथवा अल्प स्नान से स्वच्छ किया जाए, पर यदि शरीर सहन कर सके तो।

3. पाठ जप समय चुप रहें। अन्य बातचीत न करें ।

4. जिस बाणी का पाठ, मूल-मंत्र का जप अथवा नाम जपना है, उसके भाव की समझ और श्रद्धा हो।

5. मन सावधान रहे। यदि जप करते समय मन अन्य तरफ़ जाए जो तो उसे रोक कर अपने भाव पर रखें।

6. देर तक नित्य प्रति अभ्यास करें।

7. समय सब से अच्छा प्रभात समय है वैसे नाम का समय मन प्रत्येक समय है विशेष करके गृहस्थी के लिए जब फुर्सत हो नाम जपने के लिए उत्तम समय है।

8. कई व्यक्तियों को सुबह एकान्त में सैर करते हुए सहज-सहज पाठ करना अथवा सिमरना-जप करना अधिक सुखदाई और रसमय महसूस होता है। इसलिए अपने शरीर की आवश्यकताओं

का विचार कर लेना उचित है। सभी शरीर और उन के मिजाज़ और शक्तियाँ एक जैसी नहीं होती, सारा दिन रोटी कमाने की मेहनत (परिश्रम) करने वालों का शरीर, सारा दिन कोई काम न करने वालों के तुल्य नहीं हो सकता, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नाम जपने की मेहनत (परिश्रम) करनी चाहिए, परन्तु सहज रंग में, क्योंकि इस मार्ग का नाम ही 'सहज' है।

कुछ परहेज़ भी आवश्यक हैं :

1. भूख से अधिक खाना। 2. नींद अधिक लेना। 3. आलस्यों में होना। 4. मन के विक्षेप में रहना। 5. शारीरिक आवश्यकता से कम सोना।

पाठ और जप तीन हैं :

1. बाणी का – जैसे नित्य नेम की बाणी जपु जी साहिब आदि।

2. मूल मंत्र का – '१ – ओंकार ੴ ' से गुर प्रसादि तक।

3. नाम–**'वाहिगुरू गुर-मंत्र है, जपि हउमै खोई।'**

(भाई गुरदास जी वार १३- २)

नाम पहले रसना से जपना है, जिसको जपु कहते हैं (कोष में जपु के अर्थ चुपचाप पाठ करना भी है, पर प्रयोग में जपु-रसना से 'सिमरन' है पर मन से जपु करना)। फिर यह सूक्ष्म होकर अंदर चला जाता है, मन में समाए इसको सिमरन कहते हैं। जप भूलता नहीं, खुद होता है और शरीर में संगीतज्ञ भाव जैसे जारी रहता है तो **'गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै'** (सिध गोसिट, २७) कहा जाता है। यदि नाम की लक्षता हो आती है तो **'बनि तिनि परबति है पारब्रहमु'** (गाउड़ी, सुखमनी, २३-२) का अनुभव हो जाता है। (संथ्या श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पोथी १-३४ से ३७)।

आपि जपहु, अवरा नामु जपावहु

(स्वयं जपें तथा अन्यों को नाम जपायें)

साहिब श्री गुरू अर्जुन देव जी ने 'धर्म' की व्याख्या करते हुए यह फुर्माया है कि प्रभु का नाम जपना और पवित्र आचरण बनाना ही वास्तव में धर्म है। आप फुर्माते हैं :

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥

हरि को नामु जपि निरमल करमु॥

(गउड़ी, सुखमनी, म: ५, २६६)

इसलिए धर्म का मुख्य अंग है नाम जपना। इस तरह धर्म-प्रचार का मनोरथ हुआ लोगों को नाम मार्ग पर चलाना अथवा प्रभु चरणों से जोड़ना क्योंकि यह कर्म सभी से उत्तम है, इसलिए धर्म प्रचारक को गुरमति में विशेष आदर दिया गया है। गुरू रामदास पातिशाह फुर्मान करते हैं कि वह इन्सान धन्यता के योग्य हैं जो लोगों की भलाई के लिए उपदेशक अथवा प्रचारक बनते हैं :

उइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि उपदेसु करहि परउपकारिआ॥२॥२०॥

(वार गउड़ी, श्लोक, म: ४, ३११)

प्रचार की आवश्यकता

वास्तव में धर्म, सच्चाई, नेकी, प्रभु-प्रीत, तब तक लोगों के जीवन का अंग नहीं बनती जब तक इसको प्रचारित न किया जाए, लोगों को धर्म-मार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं दी जाए। इसीलिए ही साहिब श्री गुरू नानक पातिशाह जी जीवन-प्रयन्त धर्म प्रचार में लगे रहे और बाकी के गुरू साहिबान ने भी धर्म प्रचार की ओर सब से अधिक ध्यान दिया। फलस्वरुप सिखी देश के कोने-कोने में फैल गई। दशम पातिशाह के पश्चात् सिख अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए संघर्ष करते रहे, शहीदी प्राप्त करके इतिहास की रचना

करते रहे और धर्म प्रचार की ओर ध्यान न दे सके। राज्य प्राप्ति उपरान्त राज्य की हदें बढ़ाने के लिए तो चाहे सिंघों ने प्रत्येक प्रयत्न किया, परन्तु धर्म प्रचार की ओर अग्रसर न हुए। निष्कर्ष यह निकला की सिखों के अंदर गुरू साहिबान के लिए तो प्रेम रहा परन्तु वह गुरू साहिबान की शिक्षाएं भूल गए और उन फोक्ट कर्मों में घिर गए, जिनमें से सतिगुरों ने निकाला था। राज्य भी जाता रहा और दोबारा संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ा। इस समय सिखों में कुछ धर्म प्रचार लहरें चली, जिनमें से सिंघ सभा लहर का नाम विशेष महत्त्व रखता है। चीफ खालसा दीवान ने भी प्रशंसा योग्य काम किया। इन धर्म प्रचार लहरों का अच्छा प्रभाव पड़ा और सिखों के भीतर जागृति आई, पर कुछ दशकों के बाद इनका प्रभाव लगभग खत्म ही हो गया। कारण यह कि जो पहले प्रचारक थे, वे ऊंचे-सच्चे जीवन वाले, नाम-रसिए, विद्वान और लगन वाले थे। इनके जीवन-अन्त से ही प्रचारक लहरों का प्रभाव ढीला पड़ गया।

प्रभावहीन प्रचार

गुरुद्वारा प्रबन्ध सिख-पंथ के हाथों में आ जाने के पश्चात् भी इस ओर प्रयत्न किये गए। औरों की तरह एक मिशनरी कालेज और कुछ धर्म विद्यालय खोले गए, पर इनसे कोई अधिक फर्क नहीं पड़ा। इसका कराण यह था कि चाहे कुछ ऐसे व्यक्ति तो तैयार हो गए जिन्होंने पुस्तकें पढ़ कर ज्ञान प्राप्त कर लिया और लैक्चर देने में निपुणता प्राप्त कर ली पर नाम-रस से वंचित रहे। किसी भी धर्म के प्रचार के लिए सब से आवश्यक वस्तु है उस धर्म के श्रद्धालु व्यक्ति, जो ऊंचे-सच्चे और पवित्र जीवन वाले हों और प्रभु-प्रीत से भरे हों। प्रचार करने के लिए मनुष्य का निरोल अपनी अक्ल के सहारे किया हुआ परिश्रम कभी भी पूर्ण तौर पर सफल नहीं हो सकता। प्रिंसीपल साहिब सिंघ जी ने बिल्कुल ठीक कहा है कि परमात्मा की नाम-शक्ति मानो पवित्र अमृत है, जिसका

प्रवाह चालों और तरीकों में नहीं चल सकता, मनुष्यों की ज़रूरत पड़ती है। मनुष्य सोने की नली समझो, जिसमें से अमृत प्रवाह चलता है। पर इस प्रवाह को पवित्र रखने के लिए केवल यही काफी नहीं कि नली सोने की हो, परन्तु इस बात की भी आवश्यकता है कि नली खुली हो और उसमें कोई छेद न हो ताकि प्रवाह भर के चले और रास्ते में न बिखरे।

सतिगुरू की बाणी का उपदेश अमृत है, पर जिस प्रचारक द्वारा आता है उसके अपने जीवन की रंगत में से आता है। शुद्ध और पवित्र मिट्टी के बर्तन में पड़ा हो तो हो सकता है कि उसके स्वाद में बर्तन का स्वाद मिल जाए या रंग भी बिगड़ जाए। सतिगुरू का संदेश जीवन दाता है, परन्तु संदेश पहुंचाने वाला भी कम ज़रूरी नहीं। प्रचारक वे नहीं जो सुन्दर व्याख्यान बना कर देना जानते हैं। प्रचारक वे हैं जो मनुष्य बनाना जानते हैं, जो संत बनाना जानते हैं। जो आप मनुष्य नहीं वे औरों को मनुष्य कैसे बना सकते हैं, जिन्होंने अपने मन को शांत नहीं किया वह औरों को कैसे शांत कर सकते हैं।

मनुष्य बनने के लिए, भक्त बनने के लिए, एक सच्चे सिख के लिए प्रभु का नाम सिमरन करना अति (परम) आवश्यक है। जिन्होंने अन्य को प्रभु के मार्ग पर चलाना है, उनका आप प्रभु के साथ मिले होना अति आवश्यक है। जिन्होंने नाम रस पर व्याख्यान देने हैं, उनको नाम-रस के स्वाद का पता होना चाहिए। यह बात पक्की तरह से समझ लेनी चाहिए कि जिस प्रचार में रुहानी शक्ति नहीं वह प्रचार सजीव करने के लिए न होकर निर्जीवता बिखेरता है। व्याख्यान को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रचारक कई ढंग प्रयोग में लाता है, परन्तु यदि उसके अपने अंदर आत्मिक जीवन नहीं तो उसका व्याख्यान श्रोतों को आत्मिक जीवन नहीं दे सकता।

आत्मिक जीवन के बगैर प्रचारक में भाव तो हो सकता है पर

वह किसी नाटक के पात्र (नट) वाले भाव ही होते हैं, जो केवल स्वांग ही होता है। स्वांग से लोगों की शाबाश तो प्राप्त की जा सकती है, पर उनकी आत्मिक तृप्ति नहीं की जा सकती, माया की आग में जलते हृदय शान्त नहीं किए जा सकते, विकारों की ओर से उनको रोका नहीं जा सकता। यह तब ही संभव है यदि प्रचारक का मन शान्त हो, विकारों की लूट से बचा हो, तृप्त हो। परमात्मा का नाम-रस बिजली की शक्ति का घर है। परमात्मा आप बिजली घर है, वह 'रस' का झरना है। प्रचारक का हृदय उस काम रस की बिजली को श्रोताओं तक पहुँचाने के लिए तारों (Wire) का काम देता है। परन्तु यदि प्रचारक का हृदय माया की स्पर्श से जुड़ा पड़ा हो, तो बिजली की ताकत को आगे नहीं पहुँचा सकता ।

आजकल प्रचारकों में एक रूचि नई प्रचलित हो गई है। दो-चार अक्षर पढ़ लेना, एक दो बाणियों को कंठ कर लेना, कुछ साखियाँ याद कर लेना, गुरबाणी के कुछ प्रमाण कंठ कर लेने और अपने आप को प्रचारक समझ लेना और प्रचारक के तौर पर अपने आप को पेश करना। ऐसे प्रचारक यह भूल जाते हैं कि पहले उनको आप परमात्मा का बंदा बनना चाहिए तो ही उनके प्रचार का कोई पक्का प्रभाव पड़ेगा। निष्कर्ष यह निकलता है कि अपने हृदय रूपी बर्तन को परमात्मा के पक्ष में बनाने के बगैर उसका पुराना स्वभाव उसके साथ ही रहता है। इस प्रकार ऐसे प्रचारक लोगों को सही मार्ग पर लाने की जगह, दुखदायी शब्द बोलकर, लोगों को और दूरी पर ले जाते हैं। ऐसे प्रचारकों के विषय के विषय में सतिगुरू अमरदास जी फुर्माते हैं :

आपणा आपु न पछाणै मूढ़ा, अवरा आखि दुखाए।।
मुंढै दी खसलति न गईआ, अंधे विछुड़ि चोटा खाए।।२।।४।।

(बिहागड़ा, श्लोक म: ३, ५४९)

प्रचार का उद्देश्य

धर्म-प्रचार का वास्तविक उद्देश्य है परमात्मा से टूटे हुए मनुष्यों को फिर परमात्मा से जोड़ना। यह काम वही प्रचारक कर सकता है जिसकी टूटे हुए मनुष्यों से हमदर्दी हो और दूसरी ओर जहाँ जोड़ना है वह आप भी जुड़ा हो। यह स्वभाव तभी कायम रह सकता है यदि प्रचारक सुचेत रह कर आप नाम जपता रहे। परमात्मा की याद को हृदय में बसा के रखे।

नाम-मार्ग पर चलने से प्रचारक का हृदय पवित्र हो जाएगा और उसमें से 'नाम' का निर्मल प्रवाह चलेगा जो औरों को भी पवित्र करेगा। इसलिए पहले प्रचारक ने आप परमात्मा की हज़ूरी में रहने का ढंग सीखना है, नाम बाणी में जुड़ना है, परमात्मा में ध्यान लगाना है और फिर अन्य के हृदयों को नाम-जल से पवित्र और शान्त करना है।

गाड़ी का इंजन चाहे पूरी तरह तैयार हो, उसकी मशीनरी अथवा कल-पुर्ज़े पूरी तरह ठीक-ठाक हों पर वह तभी हैं जब इसमें आग जला कर भाप तैयार की जाए। ऐसे ही प्रचारक चाहे विद्या और धार्मिक की ज्ञान की मशीनरी से पूर्ण हो, पर जब तक उसमें परमात्मा के भजन से भाप पैदा न की जाए, वह प्रचार करने के समर्थ नहीं हो सकता।

प्रचारक के जीवन की बनावट

इसलिए प्रचारक ने प्रचार की तैयारी के लिए पहले अपने जीवन को संवारना है। उसने अपने मन को नाम-जल द्वारा विकारों से पाक पवित्र करना है, सांसारिक वस्तुओं के मोह को त्यागना है, लोभ-लालच की वृत्ति को त्यागना है, अपने ज्ञान का अहंकार नहीं करना और अपना अधिक से अधिक समय गुरबाणी को प्रेम श्रद्धा सहित पढ़ने और समझने में लगाना है। प्रभु पास विनय प्रार्थना करते रहना है कि वह गुरबाणी के उपदेशों के अनुसार जीवन जीने की बुद्धि और समर्थ बख्शे।

कई बार प्रचारक आम लोगों की तरह नित्यनेम भी एक फर्ज़ की पूर्ति के तौर पर ही करता है। बग़ैर सोचे-समझे शीघ्रता में नित्यनेम पूरा करके वह समझता है कि उसने रहित-मर्यादा का एक अंग पा लिया है पर ऐसे वह प्रभु की हज़ूरी में हाज़िरी से वंचित रहता है और अपनी आत्मिक मृत्यु की ओर चल पड़ता है।

नाम जपने में सफलता उस मनुष्य को होती है जो अपना अधिक समय इस ओर लगाता है। परमात्मा से शीघ्रता में मित्रता नहीं पड़ सकती बल्कि धैर्य रखकर निरंतर प्रयत्न (परिश्रम) करने की आवश्यकता है। मन का स्वभाव ***'आखां जीवा विसरै मरि जाउ'*** वाला बनाने की आवश्यकता है। मन की ऐसी तैयारी के लिए प्रभात समय उठकर सतिगुरू की बाणी द्वारा नाम रस पीने की आवश्यकता है। नाम रस की प्राप्ति के लिए नींद रस को त्यागना प्रचारक का पहला फर्ज़ है। एक गुरमुख विद्वान ने बहुत खूब लिखा है, ''प्रभु की फौज का कप्तान बनने के लिए केवल यह काफी नहीं है कि जैसे हो सके ज़रूर प्रभात समय उठकर 'नाम' जपे बल्कि इससे अधिक यह आवश्यक है कि हृदय में इतनी तीव्र इच्छा और खींच हो जो शरीर को आलस्य आने ही न दे।''

मुख-ज्ञानी नहीं बनना

मुख-ज्ञानी वह है जो मुख से ज्ञान की बातें करता है पर उसके हृदय में सत्य नहीं होता, उसकी कथनी और करनी में अंतर होता है। वह पुस्तकें पढ़ कर ज्ञान तो प्राप्त कर लेता है, दलीलबाज़ी (तर्क) में वह चतुर हो जाता है, अपने सुन्दर व्याख्यानों से लोगों पर प्रभाव डालता है और उनसे शाबाश प्राप्त करता है, पर प्रभु-प्रीत से वंचित ही रहता है, अपने ज्ञान के अहंकार में मस्त औरों को बहुत तुच्छ समझता है। सतिगुरू ऐसे प्रचारक के 'गुण' ऐसे बताते हैं :

करम धरम जुगति बहु करता, करणैहारु न जानै॥

उपदेसु करै आपि न कमावै, ततु सबदु न पछानै॥३॥१॥३८॥

(आसा, म: ५, ३८०)

कबीर साहिब ऐसे प्रचारक को कहते हैं, मुख-ज्ञानी तेरे हृदय में तो कपट है पर तू मुँह से ज्ञान कथन करता है। हे कपटी मनुष्य, तू पानी क्यों मंथ रहा है? जैसे पानी मंथन का कोई लाभ नहीं, ऐसे ही इस तरह के प्रचार का कोई फायदा नहीं :

हिदै कपटु मुख गिआनी॥ झूठे कहा बिलोवसि पानी॥१॥८।

(सोरठि, कबीर जी, ६५६)

ऐसा ही एक प्रचारक गुरू नानक देव जी को दूसरी उदासी (प्रचार दौरे) समय मटन साहिब (कश्मीर) में मिला था। उसका नाम था पंडित ब्रह्मदास। वह अपने साथ सदैव धार्मिक पुस्तकों के भंडार ले कर चलता था और अन्य विद्वानों को धार्मिक-चर्चा में हरा कर प्रसन्न होता था। सतिगुरू ने इस गर्व में मस्त पंडित को समझाया कि धार्मिक पुस्तकों की पढ़ाई और घमंड पैदा करने वाली 'ज्ञान चर्चा' से प्रभु नहीं पसीतजा, वह तो प्रेम भक्ति का भूखा है। प्रभु की दरगाह में कोरे ज्ञान का कोई मूल्य नहीं पड़ता, केवल नाम सिमरन का ही मूल्य पड़ता है। नाम को छोड़कर अन्य कर्म कमाने केवल घमंड में फिरना ही है :

पढ़ि पढ़ि गडी लदीअहि पढ़ि पढ़ि भरीअहि साथ॥
पढ़ि पढ़ि बेड़ी पाईऐ पढ़ि पढ़ि गडीअहि खात॥
पढ़ीअहि जेते बरस बरस, पढ़ीअहि जेते मास॥
पढ़ीऐ जेती आरजा, पढ़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल, होरु हउमै झखणा झाख॥१॥८॥

(वार आसा, श्लोक, म: १, ४६७)

नाम-सिमरन पर इसलिए इतना बल दिया गया है ताकि मनुष्य पुस्तकें पढ़ कर केवल मुख-ज्ञानी ही न बने, केवल विद्वान ही न

बने, केवल चोंच चर्चा न करे, बल्कि एक सच्चा धर्मी बने, गुरमुख बने। धर्मी मनुष्य अपने कामों से पहचाना जाता है। नाम जपना, धर्म की कमाई करना और बाँट कर छकना उसके जीवन ढंग के मुख्य अंग बन जाते हैं। वह प्रभु की संतान मनुष्य जाति की सेवा में लीन रहता है। महान् सतिगुरों के जीवन से शिक्षा लेकर सत्य की खातिर जीवन भी कुर्बान कर देता है। मनुष्य अथवा (प्रचारक) के भीतर यह दिलेरी सिर (दिमाग) नहीं पैदा करता, बल्कि हृदय पैदा करता है। इसलिए विद्वान कहते हैं कि सिर तो विद्या से भर लेना सरल काम है, पर हृदय को धर्म के लिए तैयार करना कठिन है। अक्ल से भरा व्याख्यान तैयार करना सरल है, पर हृदय के प्यार के जज़्बे से भरा हुआ व्याख्यान एक बड़ा कठिन कार्य है।

सच्चा प्रचारक

गुरू अर्जुन पातिशाह सच्चे प्रचारक की परिभाषा निश्चित करते हुए कहते हैं कि सच्चा प्रचारक वह है जो पहले अपने हृदय को प्रभु ज्ञान से भरपूर करता है और उसके पश्चात् औरों को रिझाता है। जो पहले हृदय को प्रभु के नाम से पवित्र करता है और फिर उस नाम के बारे में लोगों को समझाता है :

प्रथमे मनु परबोधै अपना, पाछै अवर रीझावै॥
राम नाम जपु हिरदै जापै, मुख ते सगल सुनावै॥२॥४॥४३॥

(आसा, म: ५, ३८१)

उधरहि आपि, तरै संसारु॥ राम नाम जपि एकंकारु॥
आपि कमाउ, अवरा उपदेस॥
राम नाम हिरदै परवेस॥३॥२८॥९७॥

(गउड़ी म: ५, १८५)

गुरू अमरदास जी प्रचारक के गुण इस तरह बयान करते हैं-

अंम्रितु बोलै सदा मुखि वैणी॥ अंम्रितु वेखै परखै सदा नैणी॥

अंम्रित कथा कहै, सदा दिनु राती,

अवरा आखि सुनावणिआ॥२॥१५॥१६॥

(माझ, म: ३, ११८)

अर्थ : (मैं उस मनुष्य से कुर्बान जाता हूँ) जो अपने मुंह से वचनों के द्वारा, आत्मिक जीवन-दाता प्रभु नाम सदा उच्चारण करता है, वह आँखों से भी सदा जीवन-दाता परमात्मा को प्रत्येक जगह देखता पहचानता है वह जीवन-दाता प्रभु की सिफत-सालाह दिन रात करता है और अन्यों को भी (सिफत-सालाह) कह कर सुनाता है।

इसलिए ऊंची विद्या, धन और प्रचार के नए-नए ढंग मनुष्य को सफल प्रचारक नहीं बना सकते। प्रचार में ये वस्तुएँ मदद तो करती हैं, पर केवल यही काफी नहीं हैं। प्रचारक ने पहले गुरू समक्ष होकर, गुरू की इच्छा (हुक्म) में चल कर, गुरू द्वारा बतलाए मार्ग अनुसार जीवन बना कर, अपने आपको माया की नींद से जगाना है, विकारों से बच कर रहना है, प्रभु की सिफत-सालाह द्वारा हृदय में विद्यमान प्रभु को पहचानना है, उससे लगन लगानी है और फिर प्रचार के क्षेत्र में अपने फर्ज़ निभाने हैं। ऐसा प्रचारक ही अन्य को नाम-मार्ग पर चला सकता है :

जिस दै अंदरि सचु है, सो सचा नामु मुखि सचु अलाए॥

उहु हरि मारगि आपि चलदा, होरना नो हरि मारगि पाए॥२॥५॥

(वार माझ, म: ४, १४०)